आभार प्रदर्शन

(प्रथम संस्करण)

प्रस्तुत पुस्तक श्रीमान सेठ फतेहलालजी खासगीवाला, मन्त्री श्री बन्डीलालजी दि. जैन गिरनार तीर्थक्षेत्र कमेटी प्रतापगढ़ की ही प्रेरणा से लिखी गई है और आपके सहयोग से प्रकाशन में आ रही है। आपके सुझाव पर इस पुस्तक के प्रकाशन का सम्पूर्ण व्यय **श्री बन्डीलालजी दिगम्बर जैन गिरनार तीर्थक्षेत्र कमेटी,** जूनागढ़ ने प्रदान किया है। एतदर्थ मिशन मन्त्रीजी एवं कमेटी का अत्यन्त आभारी है।

विनीत- कामताप्रसाद जैन

प्र. संचालक

अ.वि. जैन मिशन, अलीगंज (एटा)

(द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम संस्करण)

द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन भी श्रीमान कैलाशचंद्रजी खासगीवाला, उपमन्त्री श्री बन्डीलालजी दिगम्बर जैन गिरनार तीर्थक्षेत्र कमेटी प्रतापगढ़ के निर्देशानुसार **श्री बन्डीलालजी दिगम्बर जैन गिरनार तीर्थक्षेत्र कमेटी,** जूनागढ़ के अर्थ-व्यय से हुआ था। अब इस पंचम संस्करण का प्रकाशन भी श्री सुरेन्द्रकुमारजी पाडलिया एडवोकेट संयुक्त मन्त्री श्री बन्डीलालजी दि. जैन गिरनार तीर्थक्षेत्र कमेटी प्रतापगढ़ के निर्देशानुसार **श्री बन्डीलालजी दिगम्बर जैन गिरनार तीर्थक्षेत्र कमेटी,** द्वारा हो रहा है। एतदर्थ धन्यवाद।

विनीत- वीरेन्द्रप्रसाद जैन

सं. संचालक

श्री अ.वि. जैन मिशन, अलीगंज (एटा)

प्राक्कथन

श्री "गिरनार गौरव" पुस्तक का छठा संस्करण का प्रकाशन कराने में प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। पुस्तक के प्रथम संस्करण का संकलन श्रीमान कामताप्रसादजी जैन, संचालक श्री अखिल विश्व जैन मिशन अलीगंज, एटा द्वारा किया गया है व यह छठा संस्करण भी उसी संकलन का प्रकाशन है। तीर्थराज श्री गिरनार भारतवर्ष के समस्त जैनियों के श्रद्धा व पूजा का केन्द्र बिन्दु रहा है व प्राचीनकाल से इस तीर्थराज की जानकारी के लिये पुस्तक समाज के लिये उपयोगी होगी, इसी विश्वास के साथ यह छठा संस्करण प्रस्तुत है।

सुरेन्द्रकुमार पाडलिया

मन्त्री- श्री बन्डीलालजी दिगम्बर जैन

कारखाना श्री गिरनार

दो शब्द

श्री गिरनार तीर्थ क्षेत्र का गौरव गरिमा को पुस्तक रूप में प्रकाशित कराने का मेरा विचार हो रहा था कि सन् १९३६ में राणा त्रिभुवनदासजी एडवोकेट व भूतपूर्व दीवान जूनागढ़ राज्य से राजकोट में मिलना हुआ। उस समय श्री गिरनार पहाड़ के लिए जूनागढ़ राज्य व श्वेताम्बरियों को आपसी जाँच के वास्ते कमीशन नियुक्त हुआ था। उस कमीशन में उपरोल्लिखित राणा साहब सरकार की ओर से पैरोकार नियुक्त हुए थे। उनसे वार्तालाप होने पर इस तीर्थराज सम्बन्धी विवरण व वृतान्त आदि पर विचार कर शास्त्रीय व ऐतिहासिक आदि पुरातत्व एकत्रित कर पुस्तक रूप में प्रगट कराने का मेरा विचार और भी दृढ़ हो गया। अतएव मैं इस विषय में कई एक जैन व अजैन विद्वानों व इतिहासज्ञों से कुछ प्रश्नोत्तर को लेकर लिखा पढ़ी करता रहा और श्री गिरनार तीर्थ सम्बन्धी लेखन जिस किसी पुस्तक में हो उसकी खोज में रहा। यद्यपि कुछ अजैन विद्वानों ने मेरे पत्रों के जवाब देने की अवश्य कृपा की, परन्तु हमारे जैन विद्वानों की तरफ से कोई विशेष रुचि इसमें प्रगट न की गई। एकमात्र श्रीमान् बाबू साहब कामता प्रसादजी, संचालक अ.वि. जैन मिशन और सम्पादक 'अहिंसावाणी' अलीगंज ने सहानुभूति प्रगट करने की कृपा की और मेरी प्रार्थना पर आपने सामग्री एकत्रित कर इस पुस्तक को लिखने का भार अपने ऊपर लेना स्वीकार कर मुझे कृतज्ञ किया।

श्री कामताप्रसादजी ने अत्यन्त प्रशंसा के साथ कई जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर शास्त्र व अजैन, वैदिक व हिन्दू शास्त्र पुराण एवं पाश्चात्य विद्वानों व यात्रियों की पुस्तकों व शिलालेखों आदि का अध्ययन कर यह एक छोटी-सी पर अती महत्वपूर्ण पुस्तक लिखकर गागर में सागर भर देने की उक्ति को चरितार्थ किया है।

आपने जैन धर्म व दिगम्बर मत की प्राचीनता तथा दिगम्बर मान्यता के अनुसार इस तीर्थराज की महान पवित्रता व प्राचीनता अत्यन्त ही सुन्दर ढंग से और वास्तविक प्रमाणों के साथ सिद्ध कर बताई है। आपका जैन और अहिंसा धर्म के प्रचार के प्रति अनेक सेवायें हैं, जिनसे पाठकगण परिचित हैं ही, परन्तु श्री गिरनार गौरव नामक पुस्तक लिखकर इस तीर्थराज का ही नहीं वरन् जैन धर्म एवं सारे दिगम्बर समाज के प्रति आपने महान सेवा की है, जिसके लिए मैं तथा हमारी **बंडीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना गिरनार** कमेटी श्रीमान बाबू कामताप्रसादजी के आभारी हैं, आपने **'गिरनार गौरव'** क्या लिखा है, उसमें आपने अपनी अटूट भक्ति भर दी है ! कोई श्रद्धालु व्यक्ति इसे पढ़कर भक्ति से आनन्द विभोर हुए बिना रह नहीं सकता और इतिहास तो है ही!

मुझे अत्यन्त खेद के साथ प्रगट करना पड़ता है कि हमारे दिगम्बर समाज मुख्यतः विद्वज समाज की जैन इतिहास के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं रही है। परिणामतः जैन धर्म के प्रति साम्प्रदायिकता ने अत्यन्त अन्याय किया है और वास्तविकता पर परदा डाल रखा था, परन्तु अब यह देखकर हर्ष है कि पाश्चात्यिक एवं अन्य भारतीय निरपेक्ष विद्वानों ने अनुसंधान करके यह परदा हटाया व सत्य को चमकाया है। इतने पर भी खेद है कि पाठ्य पुस्तक आदि में अभी तक वही पुरानी लकीर पीटी जाती है। इसलिए विद्वानों से प्रार्थना है कि उन पुस्तकों में सुधार कराने का प्रयत्न करें, जिससे सत्य व वास्तविकता के प्रकाश में आकर अन्याय दूर हो और जैन धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़े।

श्रीमान बाबू कामताप्रसादजी साहब ने संक्षेप में जो वर्णन किया है उससे भलीभाँति विदित होगा यह **बन्डीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना गिरनार** किस तरह से स्थापित हुआ व तबसे तीर्थराज व समाज की सेवा किस उत्साह व उमंग से कर रहा है। विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है परन्तु इतना अवश्य लिखना आवश्यक है कि इस कारखाने को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए हमेशा कई आपत्तियों का सामना करना पड़ता रहा है। पहाड़ पर नेमिनाथ का मन्दिर जिसे अब मानसिंह भोज राजा का कहा जाता है दिगम्बर का था। कर्नल टाड ने भी अपनी यात्रा के वर्णन में दिगम्बर का होना लिखा है, इसके अतिरिक्त और भी दिगम्बर मन्दिर आदि पर्वत पर थे। फिर भी इस तीर्थराज का प्रबंध एक होने पर सब अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार शान्ति से पूजन प्रक्षाल करते चले आ रहे थे, परन्तु धीरे-धीरे श्वेताम्बर भाइयों का अधिकार बढ़ जाने से दिगम्बरियों को बाधा उपस्थित होने लगी जो असहनीय होने से बन्डीलालजी के पौत्र कस्तूरचंदजी हीरालालजी प्रतापगढ़ निवासी जो बड़े धर्मात्मा व शान्तिप्रिय थे उन्होंने मन्दिर व सम्पत्ति आदि के विभाजन के लिए कलह न बढ़ाया और हजारों रुपये खर्च कर अपना कारखाना, मन्दिर, धर्मशाला आदि सब नवीन पृथक बना लिए। इस पर शान्ति न धारण कर हमारे श्वेताम्बर भाइयों के तरफ से बराबर कुछ नवीन छोटा-मोटा झगड़ा उत्पन्न होता ही रहता है। इसमें मुख्य उल्लेखनीय इस प्रकार हैं- सहस्राभ्रवन की श्री नेमिनाथजी प्रभु के चरणों की देहरियों पर अपना अधिकार जमाकर हमारे यात्रियों को बाधायें उपस्थित करना प्रारम्भ किया व किले में अपनी धर्मशाला बनाने का कार्य को रोककर धर्मशाला को ही हड़प करना चाहा जिससे मुकद्दमे होकर श्री केड़ल साहब दिवान के इजलास से १९३३ में फैसले नं. १०,३०८ से अपना अधिकार व पूजा प्रक्षाल आदि सहस आम्रवन को दोनों देहरियों के बराबर होना मानी गई व पहाड़ पर अपनी धर्मशाला का निर्णय अपने ही लाभ में रहा- इसी तरह पर श्री राजुल जी गुफा के प्रति भी पहले हस्तक्षेप करना चाहा परन्तु सफलता प्राप्त न हो सकी आदि।

श्री सम्मेद शिखरजी की तरह इस तीर्थराज पर भी सम्पूर्ण पहाड़ पर श्वेताम्बरों ने अपना अधिकार बताया और राज्य प्रकरणी सभा में दावा किया, जिसके लिए भी कमेटी को समय-समय पर कई वर्षों तक सतर्कता से प्रयत्नशील रहना पड़ा। सम्पूर्ण पहाड़ पर इनके अधिकार का दावा तो असफल रहा, कई वर्षों तक इन्होंने प्रयत्न किए परन्तु इन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी। मोन्टीथ साहब दीवान जूनागढ़ पर प्रभाव डालकर जूनागढ़ राज्य व श्वेताम्बरियों के बीच एक अंग्रेज का व्यक्तिगत आयोग भी नियुक्त कराया और सरकार की ओर से उपरोक्त श्री राणा त्रिभुवनदासजी पेरोकार नियुक्त हुए। आयोग का कार्य आरम्भ होने वाला था कि हमारे संरक्षक तीर्थभक्त रावराजा श्रीमान सर सेठ साहब हुकमचंदजी नाइट के पुत्र ने श्री नवाब साहब जूनागढ़ की आँखें खोल दीं व सर सेठ साहब के जूनागढ़ पधारने का नवाब साहब पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि आयोग वगैरा उनके पहुँचते ही केनसल हो गया। कहने का तात्पर्य यह है कि श्वेताम्बर भाई नवाबी जूनागढ़ राज्य से अपनी इच्छाओं को पूरा नहीं करा सके, तो वह इच्छा स्वतंत्रता प्राप्त होने पर सौराष्ट्र सरकार के राजस्व मन्त्री श्री सामलदास गाँधी से पूर्ण करवा ली। मोन्टीथ साहब ने तो आदेश की आड़ रखी थी परन्तु सामलदासजी गाँधी ने तो स्वयं ही एक तरफा श्वेताम्बरियों की इच्छा अनुसार अपना फैसला कर दिया और उसे सौराष्ट्र सरकार व श्वेताम्बरियों के मध्य में एक समझौते का रूप दे दिया और हमें मौखिक व लिखित आश्वासन देते हुए भी हमारे अधिकारों का कुछ ध्यान नहीं रखा व हमारे नाम के राजुल की गुफा तथा सहस्रआम्रवन व पहाड़, धर्मशाला व उसके पीछे की भूमि आदि के लिए सरकारी फैसले व सनदों आदि से, उनका उस समझौते में कुछ वर्णन तक नहीं किया।

इस पर श्रीमान मुख्यमंत्री यु.एन. ढेभरभाई साहब की सेवा में उपस्थित होकर सब स्थिति निवेदन की गई और अपनी तरफ से अपने अधिकारों को समझौते में स्पष्ट कर देने की इच्छा प्रकट की गई।

श्रीमान ढेभरभाई मुख्यमंत्री सौराष्ट्र जो बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे हैं, बड़े न्याय प्रेमी और महात्मा गांधीजी के एक महान आदर्श अनुयायी हैं- जब उन्हें यह विदित हो गया कि हमारे अधिकारों पर चालाकी से किस प्रकार कुठाराघात किया गया है तब उनकी न्याय व सत्यप्रिय आत्मा को ठेस लगी और उन्होंने उसी समय सामलदासजी गाँधी को बुलाकर पूछताछ की तो आवेदन पत्र के अनुसार दिगम्बरियों के इन सब अधिकारों के प्रति किसी प्रकार का उजर नहीं है, जिस पर मुख्यमंत्रीजी ने कहा कि इसका लिखित स्पष्टीकरण करा देने का आश्वासन श्रीमान मुख्यमन्त्रीजी साहब को हमारे प्रतिनिधि मंडल के समक्ष दिया परन्तु उनके थोड़े ही समय पश्चात अपना पद त्याग देने से वचन पूरा नहीं कर सके। इस पर वे मुख्यमन्त्रीजी साहब ने न्याय के हेतु मामला अपने हाथ

में लिया और समझौते के अनुसार सरकार से सम्बन्धित जो अधिकार श्वेताम्बरियों को दिए गए थे उसी के अनुसार दिगम्बरियों को भी दिए और जिन बातों का सम्बन्ध श्वेताम्बरियों-दिगम्बरियों के बीच था वह आपस में अपने समक्ष निपटा देने का प्रयत्न किया और श्वेताम्बर, दिगम्बर की सम्मिलित मीटिंग राजकोट में अपने समक्ष बुलाई।

श्वेताम्बरियों की ओर से श्रीमान सेठ कस्तूरभाई लालभाई अध्यक्ष आनन्दजी कल्याणजी पेड़ी आदि उपस्थित हुए और दिगम्बरियों की ओर से श्री गिरनार कमेटी के सदस्य व सेठ साहब भागचन्द्रजी सोनी और श्रीमान रायबहादुर सेठ राजकुमारसिंहजी आदि नेतागण थे।

मीटिंग में तय पाया कि कस्तूरभाई व श्रीरामजी भाई दोसी सोनगढ़ दोनों मिलकर इस मामले पर विचार कर श्रीमान ढेभर साहब मुख्यमन्त्री के समक्ष सब बातें रक्खें फिर इन तीनों महानुभावों के आपस में विचार-विमर्श होकर दिगम्बर समाज के सदस्यों व नेताओं को अपने समक्ष बुलायें और श्री कस्तूरभाई ने दिगम्बरियों के अधिकारों को सहर्ष मानते हुए और सनातन अनुसार आपसी वर्ताव रहने आदि का भी ढेभरभाई व श्री रामजीभाई के समक्ष शुद्ध हृदय से आश्वासन दिया और उसी ने समय अधिक होने का कहकर जो बातें तय पाई हैं, उनको उसी तरह लिखकर मसौदा बहुत समय पश्चात श्री कस्तूरभाई ने श्री रामजीभाई के पास भेजा। उसमें समझौते के विपरीत परिवर्तन होने से फिर कुछ समय बाद अहमदाबाद में दोनों सम्प्रदायों की मीटिंग हुई, उसमें श्री रामजीभाई व श्री कस्तूरभाई की राय से मसौदा परिवर्तन कर ठीक किया गया। वह मसौदा श्री कस्तूरभाई की तरफ से साफ होकर अभी तक श्री रामजीभाई के पास नहीं भिजवाया जिससे लिखित नहीं हुआ।

श्वेताम्बरियों के समझौते के आधार पर उन्होंने किले का कोट फोड़कर तामीर आरम्भ किया जिससे अपने अधिकार पर प्रभाव पड़ने से अपनी प्रार्थना पत्र पर फैसले तक सौराष्ट्र सरकार ने श्वेताम्बरियों को तामीर व परिवर्तन करने से रोकने का आदेश दिया।

वैसे तो यह तीर्थराज एक महान पवित्र और पूज्यनीय है ही, परन्तु दिगम्बरियों के लिए तो इसका महत्व कई प्रकार से पवित्रता का अधिकाधिक है, कारण हमारी मान्यता अनुसार श्री नेमि प्रभु के सिवाय और भी महान पुरुष श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार, शम्भुकुमार, अनिरुद्धकुमार आदि बहत्तर करोड़ सात सौ मुनिराज यहां से मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं, और श्री नेमिप्रभु के तो एक नहीं वरन तीन-तीन कल्याणक इसी तीर्थराज पर हुए हैं और आज श्रुतज्ञान की पवित्र गंगा जो बह रही है उसका स्रोत भी यही पवित्र तीर्थराज है कि जहाँ पूज्य श्रुतधर श्रीधरसेनाचार्य ने श्री पुष्पदन्त को श्रुतज्ञान देकर लिपिबद्ध कराया जो धवल, जयधवल, महाधवल के रूप में प्रकाशित होकर प्राणियों का कल्याण कर रहा है। इसके सिवाय विशेषता

यह भी है कि यहाँ पर बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के श्वेताम्बर, दिगम्बर, हिन्दू, वैष्णव शैव्य आदि अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार जो मुख्य टोकों, शिखरों पर चरण पादुकायें हैं, उनकी पूजा प्रक्षाल आदि करते आ रहे हैं। परन्तु श्वेताम्बर भाइयों के साथ समझौता होने के कारण तथा कुछ बाहरी बाधाओं के आने से कभी-कभी कोई बाबा यात्रियों के साथ बाधा उपस्थित कर देता है, परन्तु सरकार की ओर से ऐसे सार्वजनिक पूजा स्थान पर किसी भी प्रकार किसी को बाधा उपस्थित नहीं हो सके, इसका प्रबन्ध रहता है। यह समय अब साम्प्रदायिकता का नहीं है। मुख्य रूप से इस तीर्थराज की विशेषता यही रहे कि सम्प्रदायों के मध्य शांति व सद्भावना की गंगा बहती चली आई है। विश्वास है कि उस तरह सब उपस्थित बाबा लोग भी हमेशा सनातन धर्म के अनुसार यात्रियों के प्रति सद्भावना व सहानुभूति व शिष्टाचार के साथ व्यवहार करेंगे और श्री कस्तूरभाई लालभाई अध्यक्ष पेढ़ी आनन्दजी कल्याणजी एक बड़े समाज व राजमान्य व श्रीमान नेता हैं। उनसे भी यह आशा है कि समय का विचार करेंगे और श्रीमान ढेभरभाई व श्री रामजीभाई ऐसे आदर्श महान सत्य व न्याय प्रेमियों के समक्ष निर्णय हुआ है उसके अन्तिम लिखित रूप जल्द देंगे।

श्रीमान ढेभरभाई साहब मुख्यमन्त्री जो बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे, उनका हमारी कमेटी व दिगम्बर समाज अत्यन्त आभारी हैं। आपको जब-जब कष्ट दिया गया अत्यन्त शान्ति के साथ सुनवाई की, आपके पास से कभी निराश नहीं जाना पड़ा और आपने न्याय देने तथा इस तीर्थराज पर हमेशा की तरह शान्ति की गंगा बहती रहे, इसके लिए पूर्ण प्रयत्न किया। इसी तरह मैं श्रीमान रामजीभाई दोषी व श्रीमान सेठ बेचरलालभाई जस्मानी का भी आभारी हूँ कि जिन्होंने इस तरह समय-समय पर इस समस्या में पूर्ण रूप से सहायता व सलाह देकर न्याय की प्राप्ति के लिए सहायता की।

श्रीमान रावराजा सरसेठ साहब हुकमचन्दजी नाईट जो इस तीर्थराज कमेटी के संरक्षक हैं वे इस तीर्थ की रक्षा के लिए रात दिन एक करके बड़ी लगन के साथ जो प्रयत्नशील रहे हैं व रहते हैं और हम लोगों को सहायता व उत्साह दिलाते रहते हैं उसके लिए धन्यवाद है और यह शुभ कामना है कि आप आरोग्य रहें और जैन धर्म के प्रति आपकी सेवायें व उसकी रक्षा के लिये जो आपकी लगन है वह हमेशा वृद्धिगत रहे। इसके साथ ही दूसरे हमारे नेतागण श्रीमान केप्टिन रायबहादुर सर भागचन्द्रजी साहब सोनी तथा श्रीयुत भैय्या साहब राजकुमारसिंहजी, रायबहादुर सेठ मोतीलालजी राणी वाले, सेठ बेचरलालजी जस्मानी व श्री भाई रतनचन्द्रजी महामन्त्री तीर्थ क्षेत्र कमेटी व सेठ बैजनाथजी सरावगी आदि को भी हार्दिक धन्यवाद है कि जब आपको इस मामले में कष्ट दिया गया सहर्ष सहायता दी तथा प्रतिनिधि मण्डल में आने का कष्ट भी किया।

मैं अपनी कमेटी के सदस्यों आदि का भी अत्यन्त आभारी हूँ कि इस महान कार्य में अपना अमूल्य समय निकालकर समय-समय पर आवश्यकता अनुसार राजकोट गिरनार आदि आने जाने का कष्ट करते रहते हैं वह हर तरह मुझे इस तीर्थ में सहायता देकर कार्य को सुगम बनाने में सहायता करते हैं। सभापतिजी साहब मिल्टनलालजी व उपसभापति सेठ झम्मकलालजी बंडी व दीवान साहब शाह माणकलालजी, सेठ सौभागमलजी साहब तलाटी वकील साहब जबेरलालजी दोशी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अन्त में श्रीमान बाबू कामताप्रसादजी साहब के प्रति पुनः आभार प्रदर्शित करूंगा कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर अत्यन्त परिश्रम के साथ खोजकर जो यह गिरनार गौरव नामक पुस्तक लिखकर अपनी सेवा व उत्साह का परिचय दिया, वह सराहनीय है।

-फतेहलाल खासगीवाला[1]

मन्त्री-बंडीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना गिरनार प्रबन्ध कारिणी सभा

1 अब आपका स्वर्गवास हो गया है।

विषय सूची

	प्रस्तावना	पृष्ठांक अ
१	महान मंगल क्षेत्र	१
२	इतिहास के अञ्चल में	५
३	शिलालेखों के आलोक में	११
४	जैन साहित्य में विशद् वर्णन	१८
५	दिगम्बर जैनों का प्राचीन केन्द्र	३१
६.	वैदिक साहित्य में गिरनार	३८
७	वर्तमान रूप	४४
८	उपसंहार	५५

पुरानी गलतियों को इस समय सुधारा जाना जरूरी है। भारतीय इतिहास की पुस्तकों में जैन धर्म का आदि उपनिषद-काल के पश्चात अंतिम तीर्थंकर भ. महावीर से बताकर ऐतिहासिक सत्य का गला घोंटा गया। अतः जैनों का इस समय जैन धर्म प्राचीन रूप से प्रमाणित करना परमावश्यक है। अतएव इस प्रस्तावना में जैन धर्म की प्राचीनता को सिद्ध करने का प्रयास करना उपादेय है। इससे गिरनार तीर्थ की महत्ता प्रकर्षित होगी।

साधन सामग्री

जैन धर्म की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए जैनों की अपनी मान्यताएं और ग्रंथ तो हैं ही, परन्तु हम उन पर ही निर्भर नहीं रहेंगे। निःसन्देह विद्वानों ने जैन ग्रंथों के वर्णन को इतिहास के लिए उपयोगी पाया है, और जैन मान्यताएं एवं अनुश्रूतियाँ (Tradition) ऐतिहासिक तथ्य को लिए हुए प्रमाणित हुई हैं। अतः वे विश्वसनीय हैं। जैन अपनी बात न बताएंगे तो कौन बताएगा? उनकी बात दूसरे स्रोतों से भी सिद्ध हो तो बात ही निराली है। इसीलिए हम 'अपनी बात' को वैदिक और बौद्ध साहित्य एवं पुरातत्व की साक्षी से प्रमाणित करेंगे। यही हमारी साधन सामग्री हैं, जो जैन धर्म की प्राचीनता को सूर्य प्रकाश की तरह चमका देगी, यह विश्वास है। विद्वज्जन इस प्रकाशन में आकर अपनी भ्रान्त धारणा को खो देंगे यह आशा है।

जैनों की प्राचीनतम मौलिक मान्यताएं

जैनों की सिद्धान्त की कतिपय मान्यताएं ही उसको प्राचीन सिद्ध करती हैं। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित बातें उपस्थित की जाती हैं-

(१) जैन धर्म में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीवित शक्ति अर्थात जीव का होना बतलाया गया है। Enthology विद्या के निर्णयानुसार यह मत सर्व प्राचीन मनुष्यों का होना चाहिए कि वनस्पति में जीव है। यह बात-वोस सिद्धान्त से सिद्ध है। पृथ्वी में भी जीव है। इस बात को लन्दन के एक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया है, जो एक क्यूविक इंच पृथ्वी (Soil) में कम से कम पाँच करोड़ पृथ्वी कायिक जीवन बताते हैं।[1] इसी प्रकार जल के जीवों को भी विज्ञान सिद्ध करता है, और अग्नि भी जीवों से खाली नहीं है। पानी की एक छोटी सी बूँद में २६५० सूक्ष्म जन्तु होते हैं।[2]

1. "We find that soil has life and that a living soil contains a mass of micro-organic existence..... We learn that there is a minimum of millions of these denizens to the cubic inch of living soil."
- F. Sykes (The Sower, 1952-53)
2. 'सिद्धपदार्थ विज्ञान' (यू.पी. गवर्नमेन्ट प्रेस) पृ. ६५

(२) जैन धर्म की पूजा आदर्श पूजा है। जैन उन महान पुरुषों की पूजा करते हैं, जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जीवन मुक्त परमात्मदशा को प्राप्त हो चुके हैं, इसी प्रकार की पूजा प्राचीन मनुष्यों में ही प्रचलित थी, यह बात तत्ववेत्ता कारलायल ने स्वीकार की है। मेजर-जनरल फरलांग साहब ने लिखा है कि जैन धर्म से सरल पूजा में, व्यवहार में और सिद्धान्त में और कौन सा धर्म हो सकता है?[1]

(३) यही हाल अणुवाद (Atomic Theory) का है। किसी धर्म के ग्रंथों में- उपनिषदादि में अणु सिद्धान्त का उल्लेख नहीं है। सांख्य और योग दर्शनों में भी इसके दर्शन नहीं होते। वेदान्त सूत्र में तो इस सिद्धान्त का खण्डन किया गया है। अलबत्ता वैशेषिक और न्याय दर्शन में इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है, परन्तु ये दोनों दर्शन अर्वाचीन और पौरुषेय हैं। केवल जैनों और आजीविकों के निकट यह अणु सिद्धान्त प्रारम्भ से मान्य रहा है। विद्वज्जन जैनों को ही इसका आदि प्रवर्तक मानते हैं क्योंकि जैनों ने इस सिद्धान्त को पुद्गल सम्बन्धी अतीव प्राचीन (Most Primitive) मत के अनुरूप निर्दिष्ट किया है।[2]

(४) जैन सिद्धान्त में धर्म (Medium of motion) और अधर्म (Medium of rest) नामक दो द्रव्यें मानी गई हैं, जो उनकी निराली मान्यता है।

ये ऐसे सिद्धांत हैं जो जैन धर्म को अन्य धर्मों से विलक्षण और प्राचीन सिद्ध करते हैं। इनका साम्य आदि निवासी मानव की मान्यताओं के सदृश होने के कारण प्राचीनतम रूप को प्रगट करते हैं। इसलिए जैन धर्म एक अति प्राचीन धर्म होना चाहिए।

मानव का प्रारम्भिक स्थिति का वैज्ञानिक वर्णन जैन शास्त्रों में है

जैन मान्यता है कि इस कल्पकाल की आदि में भरत क्षेत्र में भोग भूमि थी। इस समय लोगों को श्रम नहीं करना पड़ता था- लोग एक विशेष प्रकार के वृक्षों के सहारे रहते थे, जो 'कल्पवृक्ष' कहलाते थे। कल्पवृक्ष ये पृथ्वीकाय के होते थे- इन्हीं पाषाण वृक्षों के आधार से उस समय के मानव रहते थे। मानव की 'वृक्ष संस्कृति' इसीलिए उन पाषाण कृतियों को भी 'वृक्ष' कहा, एर 'कल्प' शब्द के साथ। आज के ऐतिहासिक भी मानव की आदि स्थिति पाषाण युग की ऐसी ही बताते हैं।[3] इस प्रकार जैन ग्रंथों में मानव की प्रारम्भिक स्थिति का प्रमाणिक वर्णन मिलना, उसकी प्राचीनता का ही द्योतक है।

1 Short Studies in the Science of Comparative Religion pp. 243-244.
2 जैकोबी, इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स, भाग २ पृ. १९९-२००
3 "Our ancient ancestor was not very different from the animals, until he began to cook food. It is only when man began to re-arrange the elements of nature, that he began to spread his influence and became the most important animal on the earth."
Mulk Raj Anand
"The Story of Man" - 1855 pp. 14-15.

कृषि विज्ञान के अविष्कर्ता ऋषभ अथवा वृषभ

समयानुसार भोगभूमि का अन्त और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ। चौदह कुलकरों अथवा मनुओं ने मानव को प्रकृति का रहस्य और उससे लाभ उठाने के प्रयोग बताए, क्योंकि इस समय तक लोग कृषि करना और अनाज को आग पर पकाकर खाना नहीं जानते थे। अन्तिम मनु नाभिराय अयोध्या में रहते थे। उनके पुत्र ऋषभ अथवा वृषभ हुए, जो महा मेधावी और ज्ञानी थे। ऋषभ ने नवीन आविष्कार किए। कृषि विज्ञान और शिल्प विद्या एवं अक्षर ज्ञान आदि बातों का उन्होंने आविष्कार किया। लोगों ने उनसे प्राकृतिक रूप में उगते हुए मीठे नरकुलों को रस भरे गन्ने में और जंगली चावल तथा गेहूँ को अच्छे रूप में उगाने के विज्ञान को सीख लिया और उन्होंने श्रम का पाठ पढ़ा व पसीने की कमाई करना सीखा।

किन्तु ऋषभदेव को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि वह जानते थे कि मानव जीवन का उद्देश्य मात्र ऐहिक उन्नति कर लेना नहीं है- ऐहिक उन्नति का मूल स्रोत भी मानव का अन्तर है, जहां पूर्ण ज्ञान, दर्शन और सुख का सोता हिलोर रहा है। इसलिए ऋषभदेव ने घर बार और राज पाठ का मोह त्यागकर वनवास स्वीकार किया। लोगों को उन्होंने घर गृहस्थी बनाकर रहना सिखाया और फिर उससे अलग होना भी बताया। शाश्वत सत्य और विराट अनन्त रूप को मानव घर के छोटे से दायरे में नहीं पा सकता। जब वह दिशाओं को अपना अम्बर और विश्व को अपना घर मानकर बिचरेगा तब वह अन्तर्दृष्टा होकर महान बनकर चमकेगा। ऋषभ ने यही किया। छै-छै मास के तप माढ़कर वह बैठ गए। कैलाश के रम्य शिखर पर चढ़कर उन्होंने सत्य को पाया और उसे दुनिया को बतलाया इसीलिए ऋषभ पहले तीर्थङ्कर हुए और उन्होंने जिस धर्म को बताया यह आज जैन धर्म कहलाता है।

जैन धर्म के आदि प्रणेता ऋषभदेव थे

जैन धर्म की उक्त मान्यता का समर्थन जैनेतर साहित्य और पुरातत्व से होता है। पहले ही वैदिक साहित्य को देखिए तो ऋग्वेदादि में ऋषभ नामक महापुरुष का उल्लेख मिलता है।[1] विद्वज्जन उनको जैन तीर्थंकर ही मानते हैं।[2] 'महाभारत' (शान्ति पर्व) में भी ऋषभ का उल्लेख है।[3] श्रीमद्भागवत और 'विष्णुपुराण' में ऋषभदेव को आर्हत (जैन) मत का प्रवर्तक लिखा है।[4]

1 ऋग्वेद अ. मन्त्र ८ सूत्र २४
2 डॉ. राधाकृष्णन, इण्डियन फिलासफी
3 'ऋषभादि नाम महायोगी नामाचारे। इष्टात अर्हतारयो मोहिता॥'
4 विष्णु पुराण २/१ पृ. ७७

बौद्धों ने भी ऋषभ और वर्द्धमान महावीर को जैनों का आदि और अन्तिम तीर्थंकर घोषित किया है। भारत के आदिकालीन शासकों में उन्होंने ऋषभ और भरत को गिना है।[1]

भारतीय पुरातत्व में मोहन जोदड़ो से प्राचीनतम स्तर से जो मुद्राएं मिली हैं उन पर ऋषभ मूर्ति के अनुरूप आकृतियाँ अंकित हैं जिन्हें विद्वज्जन ऋषभ मूर्ति का पूर्व रूप ही मानते हैं।[2] और पटना म्यूजियम में मौर्यकालीन जिन प्रतिमा सुरक्षित है।[3] और खंडगिरि और उदयगिरि की प्रसिद्ध हाथी गुफा में अंकित जैन सम्राट ऐल खारबेल के प्राचीन शिलालेख (ई. पूर्व द्वितीय श.) से प्रमाणित है कि नन्द-काल में ऋषभ जिनकी मूर्तियों का प्रचलन था।[4] यदि भ. ऋषभदेव नामक कोई महापुरुष हुआ ही न होता, तो प्राचीनकाल में मानव उनकी मूर्ति कैसे बनाते?

इस प्रकार यह सिद्ध है कि अल्पकाल में जैन धर्म के आदि संस्थापक ऋषभदेव थे। आधुनिक इतिहासवेत्ता जो भ. महावीर को जैन धर्म का संस्थापक बताते हैं, यह गलत है।

वैदिक आर्यों के पहले जैन

वास्तव में जब वैदिक आर्य भारत में आए अथवा सप्तसिन्धु प्रदेश से आगे बढ़े तो उनका साक्षात भारत के उन आदिवासी लोगों से हुआ जो इक्ष्वाकु, द्राविड़, असुर आदि कहलाते थे। यह इक्ष्वाकु आदि लोग नगरों में रहते थे। जैन ग्रन्थों में ऋषभदेव की सन्तति को इक्ष्वाकु नाम से प्रसिद्ध हुआ लिखा है, क्योंकि ऋषभदेव ने कृषि विज्ञान में पहला आविष्कार इक्षु रस को प्राप्त करने का किया था। उनका शाश्वत नगर अयोध्या था - ऋषभ ने नागरिक जीवन की शिक्षा लोगों को दी थी। लोगों को ब्राह्मी लिपि और प्राकृतिक भाषा का बोध कराया था। उन्हें अपने मान्य पूर्वजों की भक्ति करने का पाठ पढ़ाया था। शाकाहार पुष्प पूजा करना भी लोगों को सिखाया था। उन्होंने लोगों को श्रम करके अपने भावी जीवन को सुखमय बनाने का उपदेश भी दिया था। इसीलिए वह 'श्रमण' कहलाते थे कि अदृश्य शक्ति के भरोसे रहना और उसे प्रसन्न करने के लिए बलि देने का विधान उनके धर्म सिद्धान्त में नहीं था। किन्त वैदिक आर्यों में सब बातें इसके विपरीत थीं। वे नगरों में न रहकर इधर-उधर घूमा फिरा करते। उनकी भाषा प्राचीन संस्कृत से मिलती-जुलती थी। वे प्रकृति की शक्तियों को दैव अलंकार में गुम्फित करके पूजते थे। सारांश यह कि ऋषभ के अहिंसा धर्मानुयायी इक्ष्वाकु, द्राविड़, असुर आदि लोगों की मान्यताओं और जीवनचर्या से इन वैदिक

1 मंजुश्रीमूजकल्प (आगे देखिए)
2 मार्डन रिव्यू, अगस्त १९३२, पृ. १५८-६०
3 जैन ऐन्टीक्वारी, भा. १३ पृ. ९६
4 Notes on the remains on Dhauli and in the caves of Udayagiri and Khandagiri. p. 2

आर्यों की मान्यता और चर्या भिन्न प्रकार की थी।[1] जब वे ऋषभ मतानुयायी इक्ष्वाकु आदि वैदिक आर्यों के सम्पर्क में आए तो उन्होंने बहुत-सी बातें इन प्राचीन जैनों से ली थीं। जैन अहिंसा का प्रभाव उन पर सर्वोपरि था।

द्राविड़ और असुर जैन थे

इक्ष्वाकों के अनुरूप ही द्राविड़, असुर, नाग आदि वंशों के लोग भी जैन धर्मानुयायी थे। द्राविड़ साहित्य की आदि रचनायें जैनों की ही कृतियाँ हैं। ऋषभ ने उनसे प्रचार किया था। 'श्रीमद्भागवत' में भी लिखा है कि उन्होंने दक्षिण के कोंकण, द्रविड़ आदि देशों में ब्राह्म (आत्म) धर्म का प्रचार किया था। वे स्वयं कैवल्यपति ठहरते थे, योगचर्या उनका आचरण और आनन्द उनका स्वरूप था। द्राविड़ राजा उनके अनन्य भक्त थे - वे सभी दिगम्बर जैन मुनि हुए थे और तप तपकर उन्होंने शत्रुञ्जय पर्वत से सिद्धपद को पाया था, यह बात 'निर्वाण कांड गाथा' नामक प्राचीन ग्रन्थ से स्पष्ट है।[2] आज भी जैनी इन द्राविड़ सिद्ध परमेष्ठियों की पूजा करते हैं। द्राविड़ लोग निस्सन्देह जैनी ही थे।

भारत के प्राचीन आदि निवासी लोगों में असुरों का भी अपना स्थान था, जिनेन्द्र भगवान की पूजा न केवल नरेन्द्र करते थे, बल्कि नागेन्द्र और असुरेन्द्र भी करते थे, ऐसे उल्लेख मिलते थे। वैष्णवों के मान्य 'विष्णु पुराण' में असुरों का एक प्रसंग आया है, जिससे स्पष्ट है कि असुर लोग जैन धर्मानुयायी थे। यह असुर मुख्यतः नर्मदा नदी की उपत्ययका में रहते थे। देवता लोगों से इनकी बनती न थी। ये पशुबलि पूरक यज्ञों को ध्वंश करते थे। यह असुर इतने बलवान थे कि देवताओं की भी इनके सामने कुछ चलती न थी। अतः देवता विष्णु की शरण में पहुँचे और उन्होंने इन असुरों में जैन धर्म का प्रचार किया। 'विष्णु पुराण' में लिखा है कि -

'इत्युक्तो भगवास्तेभ्यो मायामोहं शरीरतः।
समुतपद्यो ददौ विष्णु प्राइ चेदं सुरोत्तमान्॥४१॥
मायामोहोयमखिलान दैत्यांस्तान् मोहशिष्यति।
ततो बध्या भविष्यन्ति वेदमार्ग बहिष्कृताः॥४२॥
स्थितो स्थितस्य मे बध्या पावन्तः हरिपंथिनः।
ब्रह्मणो येऽधिकारस्था देवदैत्यादिकाः सुराः॥४३॥
तद्वच्छत् नभकार्या महामोहोऽयमग्रतः।
गच्छवद्योपकाराय भवतां भविता सुराः॥४४॥ - विष्णुपुराण अ. १८

1 श्री सुनीतकुमार चटर्जी का अध्यक्षीय भाषण अहमदाबाद प्राच्यविद्या परिषद देखिए एवं प्रो.ए. चक्रवर्ती का लेख अंग्रेजी 'जैनगजट' में देखिए।

2 पंडुसुआ तिण्णजणा दविणडणरिन्दाण अट्ठकोडीओ।
संत्तुञ्जय गिरिसिहरे णिव्वाण गया णमो तेस्सिं॥ - - - निव्वाण कांड गाथा ६

विष्णु ने एक माया मोह नामक व्यक्ति उन देवों को दिया और कहा कि अपनी माया (जादू) से असुरों को धर्म भ्रष्ट कर देगा, तब तुम विजयी होगे। तदनुसार मायामोह असुरों के पास पहुँचा और उन्हें बहुत तरह से समझाकर वेदमार्ग विमुख बना दिया। यह माया मोह एक दिगम्बर जैन मुनि के भेष में असुरों के पास पहुँचा था और उन्हें अर्हन्त (जैन) धर्म का भक्त बनाया था। यही उल्लेख वैष्णवों के 'पद्म पुराण' (प्रथम सृष्टि खण्ड १३ पृ. ३३) में भी है जिससे माया मोह को दिगम्बर, मुण्डेसिर और मोरपिच्छिधारी योगी लिखा है। (योगी दिगम्बरों मुण्डी बर्हिपत्रधरोह्यय)। उसने असुरों को जैन धर्म का उपदेश देकर उन्हें दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित किया।[1] 'देवी भागवत' (स्कंध ४ अ. १३) में भी ऐसा ही वर्णन है। उसमें असुरों को देवरिपु कहा है।[2] 'मत्स्य पुराण' (अ. २४) में भी यह प्रसंग आया है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि असुर लोग वैदिक धर्मानुयायी देवों के शत्रु थे और वेदमार्ग बहिष्कृत माने जाते थे। वे दिगम्बर जैन धर्म के अनन्य भक्त थे।

वैदिक साहित्य में इन असुर लोगों की निम्नलिखित विशेषतायें वर्णित है :-

(१) असुर लोग 'प्रजापति' की सन्तान थे।

(२) उनकी भाषा संस्कृत नहीं थी। पाणिनि ने उन्हें व्याकरण ज्ञान से हीन बताया है। ऋग्वेद (७/१८/१३) में उन्हें 'विरोधी-भाषा-भाषी' (of hostile speech) और वैदिक आर्यों का शत्रु (१/१७४-२) कहा है।

(३) असुरों के ध्वज चिन्ह सर्प और गरुड़ थे।

(४) वे क्षात्र धर्म प्रधान थे।

(५) वे ज्योतिष विद्या में निष्णात थे। (ऋग्वेद १/२८-५)

(६) माया का जादू (magic) असुरों की एक विशेषता थी।

(ऋग्वेद १/१६०-२३)

असुर लोगों की उक्त विशेषतायें आज भी जैनों के प्रसंग में ठीक बैठती और अनूठी हैं। जैन ग्रंथ श्री ऋषभदेव को आदि ब्रह्मा और प्रजापति भी कहते हैं,[3] सभी जैन ऋषभदेवजी

1 वृहस्पतिंसहाय्यार्थ विष्णुना मायामोहसमुत्पादनम् दिगम्बरेण मायामोहेन दैत्यान् प्रतिजैनधर्मोपदेशः दानवानां मायामोहमोहितानां गुरुणा दिगम्बर जैनधर्म दीक्षा दानम्।'
- पद्मपुराण (वेंकटेश्वर प्रेस) पृ. २

2 'छद्मरूपधरं सौम्यं बौधर्यतं छलेन तान्।
जैनधर्म कृतस्वेन यज्ञनिंदा परं तथा॥५४॥
भो दवरिपव सत्यं ब्रवीमि भवतां हितम्।
अहिंसा परमो धर्मोऽहंतव्याह्याततायिनः॥५५॥

3 जिन सभस्रनाम व महापुराण देखो।

को अपना आदि पूर्वज मानते हैं। वे आर्य मनुष्यों के अग्रणी थे। जैनों की भाषा संस्कृत के स्थान पर प्राकृत रही है, जो वेद भाषा से भिन्न है। असुरों की भाषा भी ऐसी ही थी। असुर चिन्ह सर्प जैनों में विशेष रूढ़ है। एक से अधिक जैन तीर्थङ्करों और शासन देवताओं से सर्प का सम्बन्ध हैं। सब ही जैन तीर्थंकर क्षत्रिय थे और उनकी शिक्षा प्रत्येक मनुष्य को क्षात्रधर्म का पाठ पढ़ाती है। 'जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा'- यह जैनों की उक्ति है। ब्राह्मण और बौद्ध लेखकों ने जैनों को ज्योतिष विद्या में निष्णात लिखा है।[1] और प्राचीन भारत में एक समय जैन मतानुसार कालगणना प्रचलित थी।[2] जैनेतर लोग तीर्थंकरों को बाह्यविभूति और अतिशय देखकर इन्द्रजाल जैसे जादू का अनुभव करते थे। इस प्रकार असुरों की सभी विशेषतायें जैनों में मिलती हैं, जो वैदिक मत से बिल्कुल निराले थे। अतएव उनको जैन धर्मानुयायी मानना सुसंगत है। असुरों के आवास नर्मदा उपत्ययिका में अति प्राचीन सभ्यता के प्रचलन चिन्ह मिलते हैं, वहाँ के पुरातत्व में जैन मूर्तियाँ भी मिली हैं। कसरावद के पुरातत्व से ईस्वी पूर्व की शताब्दियों में वहाँ जैन धर्म का अस्तित्व प्रमाणित है। वहाँ कई प्राचीन जैन तीर्थ भी हैं।

भारत का आदि धर्म जैन धर्म

इस प्रकार वैदिक-आर्यों को भारत में जिन इक्ष्वाकु, द्राविड़, असुर आदि लोगों से सामना करना पड़ा वे जैन धर्मानुयायी आर्य थे। उस समय भारत का धर्म जैन था, जिसका प्रभाव वैदिक आर्यों पर भी पड़ा। मेजर जनरल जे.जी.आर. फरलाँग सा. ने स्पष्ट लिखा है कि 'ईसा से पहले २५०० वर्षों तक बल्कि अज्ञात समय से भारत में भाविड़ों का राज शासन था। उस समय उत्तर भारत में एक प्राचीन और अतीव सुसंगठित धर्म अर्थात् जैन धर्म प्रचलित था, जिसके सिद्धांत, सदाचार और तपश्चरण उच्चकोटि का था- इसमें से ब्राह्मण और बौद्ध वर्ग के पुराने तपस्वियों के आचार स्पष्टतया उद्धृत किए गए हैं।[3]

स्व. लोकमान्य बाल गंगाधरजी तिलक ने भी स्पष्ट कहा था कि ''भ. महावीर स्वामी जैनधर्म को पुनः प्रकाश में लाए। वे २४वें अवतार थे। उनके पहले ऋषभ, नेमि, पार्श्व आदि नाम के २३ अवतार हुए हैं, जो कि जैनधर्म को प्रकाश में लाए। इससे जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है। इनके 'अहिंसा परमोधर्मः' के उदार सिद्धांत ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप डाली है।''

1 पंचतन्त्र (५/१), प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, न्याय बिन्दु अ. ३ आदि

2 अलबेरुनी का भारतवर्ष देखो।

3 Short Studies in the Science of Comparative Religions. pp. 243-244

इसीलिए रेवरेंड एब्बे जे.ए. डुबोई (Rev. abbey J. A. Duboi) ने बहुत पहले ही घोषित किया था कि निस्सन्देह जैन धर्म ही पृथ्वी पर एक सच्चा धर्म है और यही मनुष्य का आदि धर्म है। और आज भी डॉ. जिम्मर[1] डॉ. सेन प्रभृति विद्वज्जन[2] जैन धर्म को प्राङ् आर्यकाल का धर्म निर्दिष्ट करते हैं।

अवशेष जैन तीर्थङ्कर

ऋषभदेव के पश्चात समयानुसार अवशेष २३ तीर्थंकरों ने जैन धर्म का उद्योत किया था। हजारों वर्षों पहले के मनुष्यों ने उनकी मूर्तियाँ बनाई थीं। मोहन जोदड़ो के आज के पाँच हजार वर्ष पुराने पुरातत्व में भी ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं, जो बिल्कुल जिन मूर्तियों के सदृश हैं।[3] हपप्पा[4] से मिली नग्न मानवधड़ की मूर्ति ठीक वैसी ही है जैसी कि मौर्यकाल की मानवधड़ की मूर्ति बाँकीपुर (पटना) से मिली है और जिसे डॉ. जायसवाल जैन तीर्थङ्कर की दिगम्बर मूर्ति का खण्डित भाग बताते हैं।[5] मोहन-जोदड़ो की मुद्राओं पर जैन परम्परा के

1 "Jainism does not derive from Brahman Aryan sources, but reflects the cosmology and anthropology of a much older, pre-Aryan upper class of northeastern India."

- The Philosophies of India p. 217

2 "Jainism has, however, a history much older than Mahavira, atleast two and half centuries older. Its being may perhaps be traced to pre-Aryan Indian thoughts."

- Dr. A. D. Sen (Indo-Asian culture, I. 1,738)

3 मोडर्नारिव्यू (अगस्त १९२२) पृ. १५८-१६० और मारकल सा. के मोहनजोदड़ो की प्लेट नं. १५ व १६।

4 मरसल सा. की मोहनजोदड़ो पुस्तक में चित्र नं. १० देखो।

5 जनरल आफ दी बिहार एण्ड ओड़िसा रिसर्च सोसायटी, मार्च १९७७ पृ. १३

6 जैनेऐन्टीक्वेरी में हमारा लेख एवं डॉ. राथ कृत 'जैन तीर्थङ्करों की ऐतिहासिकता' देखो।

----- ----- ----- ----- the deep strain of pessimism that characterises Upanisadic thought in common with Buddhism Jainism and the Samkhya, can hardly be said to be a direct product of vedic Brahmanism. It would perhaps be historically more correct, therefore, to regard Upansiadic as much Jain and Buddhist thoughts as having their roots more in nonvedic than in vedic ideas".

- Dr. B. B. Bhattacharya (Ibid)

कथानक और चिन्ह भी अंकित किए हुए मिले हैं।[1] डॉ. प्राणनाथ ने एक मुद्रा पर 'जिनेश्वर' शब्द पढ़ा है। प्रभासपाटन (काठियावाड़) से प्राप्त ताम्रलेख को निम्न प्रकार पढ़ा है-

"रेवानगर के राज्य के स्वामी, सु जाति के देव, नेबुशदनेजर आए हैं। यह यदुराज के स्थान (द्वारिका) आए हैं। उन्होंने मन्दिर बनाया है। सूर्य देव नेमि के जो स्वर्ग समान रेवत पर्वत के देव हैं (उन्हें) सदा के लिए अर्पण किया।"

गुजराती "जैन" भा. ३५ पृ. २

बाबुल (Babylonia) के सम्राट नेबुशदनेजर प्रथम का उल्लेख उक्त ताम्रपट में हुआ प्रतीत होता है। इससे भी जैन धर्म और तीर्थंकर नेमि की प्राचीनता स्पष्ट है, क्योंकि उक्त सम्राट ईसा से दो हजार वर्षों पहले हुए थे।

उसके अतिरिक्त मथुरा कंकाली टीला के बौद्ध स्तूप वाले लेख से स्पष्ट है कि वह स्तूप ई.पू. ८वीं शती में भगवान पार्श्वनाथजी के समय में बना था[2] धाराशिव (तेरपुर) की गुफाओं की मूर्तियाँ भी विद्याधर वंश के राजाओं ने भ. पार्श्व के समय बनवाई थीं।[3] सम्राट अशोक ने भी 'निर्ग्रन्थ' मुनियों का उल्लेख अपने सप्तम स्तम्भ लेख में किया है।[4] कंकाली टीला (मथुरा),[5] रामनगर (अहिच्छत्र-बरेली)[6] आदि स्थानों से भी ईस्वी सन के प्रारम्भ होने से शताब्दियों पहले की निर्मित तीर्थङ्कर प्रतिमायें मिली हैं। इन सबसे तीर्थङ्कर ऋषभ के पश्चात हुए २३ अन्य तीर्थङ्करों का ऐतिहासिक अस्तित्व प्रमाणित होता है।

तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि

बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रतनाथजी के समय में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी हुए थे और नारायण श्रीकृष्ण के समकालीन २२वें तीर्थङ्कर भ. अरिष्टनेमि थे। विद्वज्जन श्रीकृष्ण और

1 इण्डियन हिस्टा. क्वाटरली भाग ८ परिशिष्ट पृ. १८-३२

2 स्मिथ, जैनस्तूप एण्ड अदर एन्टीक्वेटीज ऑफ मथुरा पृ. २४-२५

3 करकण्डुचरिउ (कारञ्जा सीरीज) की भूमिका, ४१-४८

4 अशोक के धर्म लेख (काशी), पृ. ३७७

5 जैनस्तूप पृ. २४-२६

6 लूडर्स जर्नल आव दी रायल ऐशियाटिक सोसाइटी, जनवरी १९१२

तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि को ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं।[1] 'यजुर्वेद' आदि वैदिक ग्रन्थों में भी अरिष्टनेमि का उल्लेख हुआ है और पुराणों से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के समकालीन एक अरिष्टनेमि नामक ऋषि थे।[2] 'महाभारत' में भी उनका उल्लेख है। वहाँ वह निम्न प्रकार सगर नामक एक राजा को उपदेश देते हैं-

संसार में मोक्ष का ही सुख वास्तविक सुख है; जिसकी बुद्धि विषयों में आसक्त है, उसका मन अशांत होता है, स्नेह बन्धन में बँधे हुए अज्ञानी को मोक्ष नहीं हो सकता। तुम न्यायपूर्वक इन्द्रियों से विषयों का अनुभव करके उनसे अलग हो जाओ और आनन्द के साथ विचरते रहो। इस बात की परवाह न करो कि सन्तान हुई है या नहीं ... प्राणी स्वयं जन्म लेता है, स्वयं बढ़ता और स्वयं ही सुख-दुख तथा मृत्यु को प्राप्त होता है। मनुष्य पूर्व जन्म के कर्मों अनुसार भोजन, वस्त्र तथा अपने माता-पिता के द्वारा संग्रह किया हुआ धन प्राप्त करते हैं।[3]

इस उपदेश में निम्नलिखित बातें दृष्टव्य है-

(१) मुक्ति के लिए सन्तान आवश्यक नहीं। भ. नेमि के समय पुत्र का होना सद्गति के लिये सन्तान माना जाता था, इसलिये उन्होंने उसका निषेध किया था।[4] अम्बादेवी कथानक से यह स्पष्ट है।[5]

1 "Neminatha is Connected with the legend of Shri Krishna as his relative. The Herivamsapurana (P. 488) establishes the historicity of Neminatha. He was never a mythical person. He is referred to as a Jain in the prabhasapurana who obtained Salvation on the mount Raivataka".

- Dr. B. C. Law (VOA. Sp. No. Vol. V. P. 48)

2 ऋग्वेद (८, ८, २४), यजुर्वेद (२५-१९), अथर्ववेद (२० /१४३/१०) ऐतिरेय ब्राह्मण (२०/२) - डॉ. राधाकृष्णन आदि का मत है कि वेदों में तीर्थङ्करों का उल्लेख है। (इन्डियन फिलासफी) भाग १ पृ. २८७

"स्वास्ति नः इन्द्रो बृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्नाक्षयो अरिष्टनेमिः स्वास्तिनो बृहस्पतिर्द धातु।" - ऋग्वेद १/१/१६
"वाजस्यनु प्रस्वभाव भुषेमा च मुवनानी सवतः।
सनेमीराज परियाय विद्वान प्रजा पुष्टि वर्धयमानो॥" - यजुर्वेद २५१९

3 महाभारत (गीता प्रेस) पृ. १३८४-१३८५

4 भगवान पार्श्वनाथ (सूरत) पृ. ८२-८५

5 'अहिंसा-वाणी' का 'भ. अरिष्टनेमि' विशेषांक पृ. ६४-६७

(२) वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की धारणा जैसे इस उपदेश में की गई है, ठीक वैसा ही उपदेश तीर्थङ्कर नेमि ने दिया था।

(३) अन्ततः कर्मवाद का निरूपण जैनधर्म की विशेषता है।

इसके आगे 'महाभारत' में जो उपदेश अरिष्टनेमि ने दिया उससे भी स्पष्ट होता है कि लेखक जैन मान्यता को अपनाकर उपदेश दे रहा है, क्योंकि इसमें क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष आदि को जीतने वाले को मुक्त पुरुष कहा है और उसकी साधना के लिए सप्तव्यसनादि के त्याग का उपदेश दिया है। इन बातों में भासता है कि 'महाभारत' में तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि का ही उल्लेख किया गया है। अतः श्रीकृष्णजी के साथ तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि को विद्वज्जन ऐतिहासिक पुरुष ठीक ही मानते हैं[1] उनको एक मूर्ति कुशान सं. १८ की कंकाली टीला मथुरा में मिली है।[2]

तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ

तेईसवें तीर्थङ्कर भ. पार्श्वनाथजी की ऐतिहासिकता में शंका करने के लिए कोई स्थान शेष नहीं है। बौद्ध[3] और जैन[4] ग्रन्थों में इनके शिष्यों के उल्लेख मिलते हैं। उनके स्तूप[5] मन्दिर और मूर्तियाँ[6] स्वयं उनके काल से अब तक की बराबर मिलती हैं जिनसे उनका अस्तित्व प्रमाणित होता है। उदयगिरि खण्डगिरि (ओड़िसा) की रानी गुफा में ईस्वी शताब्दी से लगभग दो सौ वर्षों पहले का उत्कीर्ण ऐसा शिल्पकार्य है जिसमें कहते हैं कि भगवान पार्श्व के जीवन की घटनायें अंकित हैं[7] इन्हीं बातों को लक्ष्यकर डॉ. जिम्मर ने लिखा था कि भ. पार्श्व अवश्य

1 डॉ. फुहरर ने तीर्थङ्कर नेमि को ऐतिहासिक माना है। Ep. Indica. I ३८९ श्री नगेन्द्रनाथ बसु ने 'हरिवंश पुराण' की भूमिका (पृ. ६) में नेमि को ऐतिहासिक महापुरुष मानना ठीक बताया है।

2 इपीग्रेफिया इण्डिका, भा. २/१४ सं. १४।

3 सच्चकपुत्र का पिता (मज्झिम. १/२२५) कन्डरमसुक (दीर्घनिकाय)

4 उत्तराध्ययनसूत्र में गौतम-केसी संवाद आदि।

5 कंकालीटीला मथुरा का बौद्ध-स्तूप उनके समय में ही बना था।

6 धाराशिव और खण्डगिरि के गुफा मन्दिर और मूर्तियों के लिए 'करकन्डु चरिउ' की भूमिका तथा 'आर्केलौजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया' (Vol. L I, PP. 250, 259-260 & 270) देखिए।

7 Arch. Survey of India 41(1931), PP. 245-248.

ही हुए थे, जिन्होंने लोगों को शिक्षा दी थी। उनकी ऐतिहासिकता स्वयं सिद्ध है।[1] अन्य विद्वान भी ऐसा ही मानते हैं।[2]

अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर

अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर वर्द्धमान के विषय में तो सर्व सम्मत मत है कि वे भ. बुद्ध के समकालीन ऐतिहासिक महापुरुष थे। चौबीस तीर्थङ्करों में वे सर्व अन्तिम थे, इसलिए भ. महावीर जैन धर्म के संस्थापक नहीं हो सकते। उन्होंने प्राचीन जैन धर्म का पुनरोद्धार मात्र किया था। भ. बुद्ध ने संभवतः उनको देखा था और उसके विषय में कहा था-

'एवं वुत्ते, महानाम, ते निगंठामं एतदवोचुं, निगण्ठो अबुसो नाटपुत्तो सव्वञ्ञु सव्वसस्सावी अपरिसेसं णाण दस्सनं परिजानातिः इत्यादि।[3]

'हे महानाम! जब मैंने उनसे ऐसा कहा, तब वे निर्ग्रन्थ (निम्न जैन साधु) इस प्रकार बोले कि अहो, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (भ. महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं।" इस उल्लेख से न केवल भगवान महावीर का अस्तित्व ही प्रमाणित होता है, बल्कि उनका सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होना भी सिद्ध है। एक अन्य प्रसंग में राजकुमार अभय आनन्द से, जो भ. बुद्ध के अनन्य शिष्य थे, कहते हैं कि 'निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वह ज्ञान के प्रकाश को जानते हैं अर्थात् केवल ज्ञानी हैं। उन्होंने जाना कि ध्यान द्वारा पूर्व कर्मों को नष्ट किया जाता है। कर्मों के नष्ट होने से दुःख का होना बन्द हो जाता है। दुःख के बन्द हो जाने से विषय वासना मिट जाती है और विषय वासना के क्षय

1 "Atleast with respect to Parshva, the Tirthankara just preceding Mahavira, we have grounds for believing that he actually lived and thought..... Parshva ..... is the first of the long series whom we can fairly visualize in a historical setting."

- Philosophies of India

2 ..... there would, atleast be no serious inconsistency if Parshavanatha be supposed to be a real historical person, a preacher of Jain faith before Mahavira" - Dr. H. Bhattacharya, Ph. D. (VOA. Parshva Sp. No. 15)
"Parshva was undoubtedly a historical person."

- B.C. Law (Ibid p. 24)

"Parshva existed as a real person"

- Dr. Jarl Charpentier (Uttaradhgayana Sutra, Intro. P. 21)

3 मज्झिमनिकाय (P.T.S.) भाग १ पृ. ९२-९३

होने से संसार में दुःख का अन्त हो जाता है।[1] बौद्ध ग्रन्थ 'दीर्घकाय' में भगवान महावीर को संघ नेता, गणाचार्य विशेष प्रख्यात तीर्थङ्कर और मानवों द्वारा पूज्य लिखा है।[2] इन उल्लेखों से भगवान महावीर, जो अपने कुल 'ज्ञातृवंश' के कारण 'ज्ञातृवंश' नाम से प्रसिद्ध थे, भ. बुद्ध के समकालीन सर्वज्ञ और सर्वदर्शी महापुरुष सिद्ध होते हैं।

जैन धर्म के प्राड्ऐतिहासिक कालीन होने की साक्षी

इस प्रकार जैन धर्म की प्राचीनता साहित्य और पुरातत्व की साक्षी से एक अतीव दीर्घ प्राड्ऐतिहासिक काल में गुम्फित मिलती है। इस कल्पकाल के आदि तीर्थङ्कर भ. ऋषभ देव का समय पाषाण काल (Stone) से सटा हुआ कृषिकाल (Agriculture Age) विद्वानों ने माना है।[3] अतः जैन धर्म भारत का प्राड्वैदिक काल का धर्म है। यह मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं रहती। अधुना विद्वज्जन ऐसा ही मानने लगे हैं।

पूर्वोक्त साक्षी के अतिरिक्त निम्न पंक्तियों में जैनेतर साहित्य के ऐसे उल्लेख भी उपस्थित किये हैं, जिससे कि जैनधर्म का अस्तित्व प्राड् ऐतिहासिक काल में सिद्ध होता है।

शाकटायन के अनादि सूत्र में 'इण् सिज जिदो-डष्यक्निोनक्' (सूत्र २८६ पाद ३) है। इसका अर्थ 'सिद्धान्तकौमुदी' के कर्त्ता ने जिनोऽर्हत' किया है जो जैन धर्म के संस्थापक का द्योतक है। शाकटायन का समय निरुक्त के कर्त्ता यास्क के पहले का है और तेस्क पाणिनि एवं पातन्जलि के बहुत पहले हुए हैं। अतः वैदिककाल के पहले से जैनधर्म का प्रचलन स्पष्ट है। यदि जैन धर्म पहले प्रचलित न होता तो शाकटायन उसका उल्लेख भला कैसे करते और कैसे स्वयं वेदों में जैन तीर्थङ्करों का नामो-उल्लेख किया जाता?

'ऋग्वेदसंहिता' (अ. २ व. १७) में 'अर्हन' शब्द का उल्लेख है[4] और ऐसी (१०/१३६/२) में 'मुनयः बातवसनाः' का उल्लेख है जिसे डॉ. वेबर दिगम्बर जैन मुनियों का द्योतक बताते हैं।[5]

1 अंगुत्तरनिकाय (P.T.S.) भाग १ पृ. २२०-२२१
2 दीर्घनिकाय (P.T.S.) भाग ३ पृ. १-३५
3 डॉ. संकलिया, 'वायस ऑफ अहिंसा' ऋषभदेव विशेषांक, पृ. ११
4 मोक्षमूलर द्वारा सम्पादित (लन्दन १८४५) भा.पृ. ५७९
5 इंडियन एन्टीक्वेरी, भा. ३० (१९०१)

'ऋषभं या सामानाना' सयत्ना नानां विषा सहिम्।
हन्तारं शत्रूणांकृधिः विराजं गोपितं गवाम्॥

ऋग्वेद अ. ८ मन्त्र ८ सूत्र २४

यह ऋषभ कौन थे?' यह जानने के लिए वैदिक टीकाकार सायण पुराणादि का सहारा लेने का परामर्श देते हैं। अतः हिन्दू पुराणों में ऋषभदेव को नाभिराज और मरुदेवी का पुत्र ठीक वैसे ही लिखा है, जैसे कि जैन ग्रंथों में तीर्थङ्कर ऋषभ के लिए मिलता है। इसी कारण[1] आधुनिक ब्राह्मण विद्वान इन उल्लेखों को जैन तीर्थङ्कर का बोधक मानते हैं।[2]

ऋषभ के अतिरिक्त वेदों में अजित[3], सुपार्श्व[4] अरिष्टनेमि[5] तीर्थङ्करों के नाम भी मिलते हैं। ऋग्वेद में ऐसे श्रमणों का उल्लेख है, जो यज्ञों में होने वाली हिंसा के विरोधी थे।[6]

1 श्रीमद् भागवतपुराण अ. ५/४, ५६
2 अहिंसा वाणी का ऋषभदेव विशेषांक देखिए डॉ. स्टीवेन्सन का निम्न वक्तव्य महत्वपूर्ण है-
3 यजुर्वेद
4 'ॐ सुपार्श्वमिन्द्रहव' - यजुर्वेद
5 यजुर्वेद, अ. ९ मं. २५
6 ऋग्वेद ३/३, १४, २१ (सत्यार्थदर्पण पृ. ९१)

"The second point in the Jain traditions which imagine has a historical basis, is the account they give of the religious Practice of Rishabha, the first of their Tirthankaras. He too, like Mahavira is said to have been a Digambara. In the Brahmanical Puranic records, he is placed on the list of kings in one of the regal families, and said to have been father to that Bharat from whom India took its name. He is also said in the end of his life, to have abandoned the world, going about, everywhere as a nacked ascetic. It is so seldom that Jains and Brahmanas agree, that I do not see how we can refuse them credit in their instance, where they do so."

- Kalpasurtar (Indro. P. XVI)

प्रो. विरुपाल वाडियर ने वेदों में तीर्थङ्करों के उल्लेख को 'जैनधर्म प्रदर्शक' में सिद्ध किया था। डॉ. श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भी यही लिखा है कि वेदों में ऋषभ, अजित और अरिष्टनेमि तीर्थङ्करों का उल्लेख है। भागवत पुराण में ऋषभ को जैन धर्म का संस्थापक लिखा है।

(दी इण्डियन फिलॉसफी, पृ. २८७)

उपनिषदों में दिगम्बर मुनियों की चर्या बहुत कुछ दिगम्बर जैन साधुओं से मिलती जुलती है।[1] उधर रामायण (बालकाण्ड सर्ग ४४ श्लो. २२) में राजा दशरथ श्रमणों को आहार देते हुए लिखे गए हैं। (तापता भूञ्जते चापि श्रमण भुञ्जते तथा)। 'श्रमण' शब्द का अर्थ भूषण टीका में दिगम्बर साधू किया गया, यथा- 'श्रमणः दिगम्बराः श्रमण वातवसनाः।' निर्ग्रन्थ श्रमण अपने दिगम्बर भेष के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। जैन शास्त्र राजा दशरथ को जैन धर्म का भक्त लिखते हैं। 'योगावाशिष्ट' के वैराग्य प्रकरण में रामचन्द्रजी कहते हैं-

नाहं रामो न मे वांछा, भावेषु न च मे मनः।
शान्त आसितुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥

-अ. १५ श्लो. ८

'महाभारत' में ऋषि व्यास जैनधर्म की ओलाचना दूसरे अध्याय के दूसरे पद में ३३-३६ सूत्रों द्वारा करते हैं। उन पर टीका करते हुए नीलकण्ठ कहते हैं कि 'सर्व संशयमितिस्याद्वादिनः सप्तभंगीनयज्ञाः' (श्लोक २ अ. ४९) सप्तभंग जैन का मुख्य न्यायसिद्धान्त है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' के आदि पर्व (अ. ३ श्लो. २६-२७) जैनमुनि की नग्नक्षपणक लिखा है। 'अद्वैत ब्रह्मासिद्ध' नामक ग्रन्थ के कर्त्ता क्षपणक के अर्थ जैनमुनि करते हैं, यथा-'क्षपणका जैन मार्ग सिद्धांत प्रवर्तको इति केचित्।' (पृ. १६९ कलकत्ता संस्करण) 'महाभारत' के शान्तिपर्व में भी (मोक्षधर्म अ. २५९ श्लो. ६) में सप्तभंगी नयका उल्लेख आया है।

'वेदान्तसूत्र' में जैन मुनियों को दिगम्बर लिखा है।

उपरान्त हिन्दू पुराणग्रन्थों में भी जैन धर्म विषयक उल्लेख मिलते हैं। विष्णुपुराण में

1 दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि, पृ. २१-२३

2 ज्योष्णीषस्तथा सिद्धो धुन्धुमारे नृपोत्तमे ॥३८८॥
कन्दर्पस्य तथा राज्ञो विजोष्णीष कथ्यते।
प्रजापतिस्तस्य पुत्रो वैतस्यापि लोचना भुवि ॥३८९॥
प्रजापतेः सुतो नाभिः तस्यापि ऊर्ण मुच्यतिः।
नाभिनो ऋषभ पुत्रो वैसिद्धकर्म दृढ़ व्रतः ॥३९०॥
तस्यापि मणिचरो यक्षः सिद्धो हैमवते गिरो।
ऋषभस्य भरतः पुत्रः सोऽपि मन्जान् तदा जपेत् ॥२१९॥
मञ्जुश्रा व कल्पैः 'तीर्थङ्कर ऋषभः निर्ग्रन्थरुपिः।'

मञ्जु श्री मूलकल्प (त्रिवन्दम्) पृ. ४५

(३१७-१८) तीर्थङ्कर सुमति तथा आहर्त-जैन मत का उल्लेख हुआ है। 'भागवत' (अ.५) 'पद्मपुराण' (पृ. २) 'वायुपुराण'- 'अग्निपुराण'- 'प्रभास-पुराण' आदि में भी जैन धर्म विषयक उल्लेख मिलते हैं।

अतएव हम देखते हैं कि वेदों से लेकर पुराणों तक बराबर जैन धर्म के उल्लेख मिलते हैं, जो इस बात को सिद्ध करते हैं कि वैदिक काल अपितु किंचित पहले से जैन धर्म भारत में प्रचलित था। उसे भ. महावीर ने नहीं चलाया, बल्कि ऋषभदेव ही उसके आदि संस्थापक थे।

बौद्ध ग्रंथों की साक्षी

यही बात बौद्ध ग्रन्थों से भी सिद्ध होती है। बौद्ध ग्रन्थ 'मञ्जु श्री मूलकल्प'[1] में भारतीय इतिहास का विवरण दिया गया है। उसमें भारत के प्रारम्भिक आदिकालीन राजाओं में दुन्धमार, कन्दर्प और प्रजापति के पश्चात नाभि, ऋषभ और भरत का होना लिखा है। ऋषभ का सिद्धकर्म और दृढ़व्रत बतलाया है। उनका यक्ष मणिचर था- वे हैमवत गिरि से सिद्ध हुए, यह भी लिखा है। निस्सन्देह प्रथम तीर्थङ्कर का निर्वाण कैलाश से हुआ था, जो हिमालय का अंग है। इसी बौद्ध ग्रन्थ में जैनों के आप्त रूप में ऋषभ का उल्लेख भी है। बौद्धग्रन्थ 'न्यायबिन्दु' (अ. ३) में ऋषभ (वृषभ) और वर्द्धमान सर्वज्ञ को आप्त अर्थात केवल ज्ञानी तीर्थङ्कर लिखा है।[1] सारांश यह है कि बौद्ध ऋषभदेव को ही जैनों का आदि तीर्थङ्कर मानते हैं।

बौद्धों ने आश्रव, संवर, श्रावक आदि शब्द जैन धर्म के लिए थे।[2] यदि जैन धर्म पहले से प्रचलित न होता तो बौद्ध ये शब्द जैनों से कैसे ले सकते थे? बौद्ध म. बुद्ध के पहले से प्रचलित मतों के अनुयायियों को मुख्यतः- प्राचीन जैनों को 'तीर्थक' नाम से उल्लेखित करते हैं।[3] बौद्धों के निकट जैन सदा ही एक प्राचीन सम्प्रदाय के रूप में मान्य मिलते हैं। वैशाली में प्राचीन जैनों (निर्ग्रंथों) के चैत्यों का उल्लेख भी वे करते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में आजीविकमत के नेता मक्खलि गोशाल के विषय में उल्लेख है कि उसने मनुष्य जाति को छह अभिजातियों में विभक्त किया था और निर्ग्रंथ (जैनों) को तीसरी अभिज.ति का माना था। गोशाल भ. पार्श्व की परम्परा में भ. महावीर से पहले हुआ था। उसका जैनों को तीसरी श्रेणी पर गिनना उसकी प्राचीनता का द्योतक है।

1 'सर्वज्ञ आसी वा सच्योतिशर्शानादिकमुपदिष्टवान यथा वृषभ वर्धमानादिरिति।
- न्यायबिन्दु अ. ३

2 The latter (Buddhist) borrowed the word Asrava from Jainism without its technical significance. The Buddhist also used the word Samvara..... most probably adopted from Jainism. - Dr. Jacobi, ERE VII. 472

3 Historical Gleanings P.P. 11-12

भ. बुद्ध का एक विवाद निर्ग्रंथ पुत्र सच्चक से हुआ था।[1] अब यदि निर्ग्रंथ अर्थात् जैन मत भ. बुद्ध के पहले से प्रचलित न होता तो सच्चक का पिता जो भ. बुद्ध से पहले हुआ था,[2] कैसे जैन होता?

'विनयपिटक' में ऐसे बहुत से उल्लेख हैं जिनमें प्रगट है कि बुद्ध के अपने बहुत से चरित्र नियम प्राचीन जैनों के लिए अथवा उनके अनुरूप निश्चित किए थे। 'महाबग्ग' में लिखा है कि बौद्ध भिक्षुओं ने ऐसे लोगों को दीक्षित किया, जो आहार लेने के लिए नंगे जाते हैं और हाथों में आहार लेते थे। इस पर जनता ने कहा कि बौद्ध भिक्षु भी तीर्थङ्करों की नकल करने लगे।[3] यह उस समय की बात है जब भ. महावीर केवल ज्ञानी हुए थे। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन तीर्थक (जैन) मुनि भ. बुद्ध के पहले से नग्न रहते थे। इन प्राचीन जैनों से, जिन्हें बौद्ध तीर्थक कहते हैं, बौद्धों ने वर्षावास, प्रौषध आदि नियम ग्रहण किये।[4] सारांशतः बौद्ध ग्रन्थ भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं कि जैन धर्म भ. महावीर से प्राचीन है और ऋषभदेव उसके आदि संस्थापक थे।

प्राचीन जैन धर्म में दिगम्बरत्व की विशेषता

भ. महावीर से पहले हुए तीर्थङ्कर भी सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे, उन्होंने भी जीव-अजीव तत्वों का प्रतिपादन सप्तभंग न्याय के अनुसार किया था। उनका मुनिवेश भी दिगम्बर था। श्वेताम्बर और मुनि ग्रन्थ भी आदि तीर्थङ्कर ऋषभ और अन्तिम महावीर को दिगम्बर अचेलक प्रकट करते हैं। मध्यवर्ती तीर्थङ्कर सामयिक चारित्र का पालन करते थे। वैदिक और बौद्ध स्रोतों से देख चुके हैं कि भ. पार्श्वनाथ एवं उनसे भी पहले के जैनमुनि नग्न रहते थे। प्राचीन जैन मूर्तियाँ भी नग्न मिली हैं। यह स्पष्ट है कि प्राचीनतम काल से जैन संघ में दिगम्बरत्व प्रधान रहा है जब तक मानव प्रकृति का होकर नहीं रहता, तब तक बाहरी बनावट मिटती नहीं और वह सत्य को पाता नहीं। अतएव जैनाचार्यों ने यथाजात रूप में विचार कर आत्म-शोधन करके मुक्त पद को पाया था। यही कारण है कि जैनधर्म अचेलक अथवा निर्ग्रंथ मत के नाम से उल्लेखित होता था।

पहले हम देख चुके हैं कि वैदिक साहित्य में दिगम्बर मुनियों के रूपों में जैनों का उल्लेख हुआ था। उपनिषदों में निर्ग्रंथ साधु को ''यथाजातरूपधरो निर्ग्रंथो निष्परिग्रह

1 मज्झिमनिकाय (P.T.S.) भा. १ पृ. २१५-२२६

2 डॉ. जैकोबी ने यही सिद्ध किया है। (जैनसूत्र S.B.E. भा. २ भूमिका पृ. २२)

3 विनयपिटक S.B.E. भा. १३ पृ. २२३

4 भ. महावीर म. बुद्धः पृ. २४०-२४२

शुक्लध्यान परायणः'' (सूत्र ६ जाबालोपनिषत)[1] लिखा है। हिन्दू 'पद्मपुराण' में निर्ग्रंथ (जैन साधु) को नग्न लिखा है।[2] 'वायुपुराण' में जैन मुनि को नग्नता के कारण श्राद्ध धर्म में आदर्शनीय कहा है।[3] टीकाकार उत्पल व सायण ने भी निर्ग्रंथों को नग्न क्षपणक माना है।[4] बौद्ध ग्रंथों को अचेलक बताया है।[5] विशाखा-पट्ट 'धम्मपदट्ट-कथा' में निर्ग्रंथ साधुओं का वर्णन नग्नवेश में मिलता है।[6] 'दाढ़ावंशी' में निर्ग्रंथों को नग्नता के कारण 'अहिरिका' कहा है।[7] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि प्राङ-महावीर काल से जैन साधु निर्ग्रंथ कहलाते और नंगे रहते थे।

शिलालेखीय साक्षी भी इसी मत की पुष्टि करती है। सम्राट अशोक के धर्म लेख में 'निगंठ' साधुओं का उल्लेख हुआ है, जिसका अर्थ प्रो. जनार्दन भट्ट नंगे जैन साधु करते हैं।[8]

सम्राट खारवेल के शिलालेख में निर्ग्रंथ साधुओं का उल्लेख है।[9] तथा मथुरा और पहाड़पुर के पुरातत्व में भी निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर जैन साधुओं का बोधक सिद्ध होता है। मथुरा में नग्न (दिगम्बर) मूर्तियों पर श्वेताम्बर गण गच्छादि के उल्लेख इस बात के प्रमाण है कि प्राचीनकाल में श्वेताम्बराचार्य जिनकल्प नग्नवेष को पूज्य मानते थे।[10] उपरान्त मथुरा कंकाली टीला के मूर्ति लेखों में निर्ग्रंथ शब्द अर्हन्त का विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। उन पर नग्न मूर्तियाँ बनी हैं।[11] अतः निर्ग्रंथ विशेषण दिगम्बर मुनियों का द्योतक प्रकट होता है,

1 दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि पृ. २१-२९

2 नग्नरूपो महाकाय: सितमुण्डो: महाप्रभः अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थों गुरुच्यते (यह उल्लेख देवासुर संग्राम के प्रसंग का है)

3 वायुपुराण गुजराती पुरात्व भा. ४ पृ. १८१

4 'निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः।- उत्पल
'कथा कौपीतोत्तरा संगादिनाम् त्यागिनो, यथा जात रूपधरा निर्ग्रन्थ निष्परिग्रहाः।'
तत्वनिर्णय प्रसाद पृ. ५२३

5 मज्झिम. १/९२, अनुत्तर १/२२०, दीर्घ १/४८-४९ इत्यादि

6 भा. ९ खण्ड २ पृ. ३८४

7 दाठावंसो (लाहौर) पृ. ९४

8 अशोक के धर्मलेख पृ. ३७७

9 दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि १२२-१२३

10 जैन स्तूप एण्ड अदर ऐण्टीक्वेटीज ऑफ मथुरा, २८

11 '..... शिलापटो प्रतिष्ठापित निर्ग्रन्थानम् अर्हता यतने सहत्मातरे।'

जैसे कि वह पांचवीं शताब्दी के कादम्ब वंश के ताम्रपत्र में प्रयुक्त हुआ है। इस लेख में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का उल्लेख 'श्वेतपट-महाश्रमण-संघ' के नाम से तथा दिगम्बरों का निर्ग्रंथ महाश्रमण-संघ के रूप में हुआ है।[1] इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बरत्व का बोधक रहा है।

पहाड़पुर (४७९ ई) ताम्रपट-लेख में आचार्य गृहनन्दि के निर्ग्रंथ संघ का उल्लेख है।[2] ईस्वी प्रारम्भिक शताब्दियों में मगध, पुण्ड समतट और कलिंग में दिगम्बर जैनधर्म प्रबल था, यह बात 'दांठावंसो'[3] और हुएनत्सांग के भ्रमण से स्पष्ट है।[4] इन दोनों स्थलों में निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर जैन साधु के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः पहाड़पुर के उक्त ताम्रपट्ट लेख में प्रयुक्त निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर जैन साधुसंघ का द्योतक है दिगम्बर जैनों में ही 'नन्दिसंघ' प्रसिद्ध रहा है। आचार्य गृहनन्दि उसी संघ के आचार्य प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकाल से दिगम्बरत्व का प्राबल्य जैन संघ में रहा है। मौर्यकाल के दुर्भिक्ष ने इस प्राचीन परम्परा में विकार उपस्थित किया था, जिसका कटु परिणाम संघ भेद हुआ। पहले तो उन कतिपय साधुओं ने अपनी नग्नता छिपाने के लिए केवल एक खण्ड वस्त्र रखा जिसे कलाई पर लटका लेते थे, जैसे कि कंकाली टीला की मूर्तियों में चित्रण है। इसलिए वे आर्द्धफालक कहलाये। उपरान्त ईस्वी प्रथम शताब्दी में उन्होंने जब श्वेत वस्त्र धारण कर लिए तब वे 'श्वेतपट्ट' अथवा 'श्वेताम्बर' नाम से प्रसिद्ध हुए। यही कारण है कि स्वयं श्वेताम्बर विद्वान श्री पूर्णचन्द्रजी नाहर ने नग्न रहने को मूल नियम माना था[5] और इसी कारण विद्वज्जन दिगम्बर जैन

1 'कादम्बानां श्री विजयशिव मृगेशवर्म्मा काल-वङ्गग्रामं त्रिषा विभज्य दत्तवान श्वेतपट महाश्रमण संगपभोगाय तृतीयो निर्ग्रन्थ महाश्रमण संघोपभोगायेति।'

- जैन हितैशी, भा. १४ पृ. २२९

2 मार्डनरिव्यू, अगस्त १९३१, पृ. १५०

3 दाठावंशी (लाहोर) पृ. १०-२५

4 ह्युनत्सांग का भारत भ्रमण (इलाहाबाद) पृ. ४७४-५४५

5 "Gradually the manners and customs of the Church changed and the original practice of going abroad naked was abandoned, then a section began to wear the white robe."

- P.C. Nahar, An Epitome Jainism p.9

मत को प्राचीन मानते हैं।[1]

निस्सन्देह प्राचीनकाल उस समय से जब से कि आदि मानव गुफाओं में नग्न रहता था- नग्नता मानव चरित्र की स्वाभाविक स्थिति मानी गई और ऋषभदेव ने उसे चरित्र की परम परिपूर्णता का धार्मिक चिह्न घोषित करके स्वयं अवधारण किया- वे नग्न होकर विचरे और वैदिक आर्यों में नग्न योगियों का प्रायः अभाव था इसीलिए भारत में प्राचीनकाल से ही दो परम्पराएँ, गंगा यमुना सी बहती हुई, मिलती हैं- (१) ब्राह्मण और (२) श्रमण परम्परा। सिकन्दर महान जब भारत आया तो उसे दोनों परम्पराओं के योगी मिले। जैन श्रमण तो नग्न रहते थे, परन्तु ब्राह्मणों की चर्या भिन्न थी।[2] इन्हीं दोनों परम्पराओं का समादर भारत में सदैव होता आया है।

इस विवेचन से पाठक दिगम्बर जैन धर्म की प्राचीन स्थिति का पता ठीक से पा चुके हैं और इससे उनका प्राचीन सम्बन्ध गिरनार पर्वत से स्वतः सिद्ध है।

1 "The term Digambara is referred to in the well known Greek phrase 'Gymnosophist' used already by Megasthenese which applies very aptly to niganthas. (Ency. Brit. XV. 128) "The Gymanosophists were Jains and neither Brahmanas nor Buddhists and that it was a company of Digambaras of this (Jains) that Alexander fell in with near Taxiles."

- Rev. Stevenson. JBBRAS. Vol. IV (1855) p. 401

2 "The Jains are divided into two great parties, Digambara and Swetambara. The latter have only as yet been traced and that doubtfully, as far back as 5th century after Chirst. The former are almost certainly the same as Niganthas, who are referred to in numerous passages of buddhist Pali pitakas and must therefore be old as 6th century B.C.".

- Encyclopaedia Britanica (11th. ed.) Vol. xxv

अन्त में हम पुनः एक बार अपने मित्र सेठ फतेहलालजी खासगीवाला का आभार स्वीकार करते हैं, जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है। यहाँ पर हम गिरनारजी क्षेत्र के मुनीमजी श्री बालराम जी को भी भुला नहीं सकते, जिन्होंने गिरनार के चित्र एवं अन्य जानकारी देकर सहयोग दिया है।

आशा है, इस रचना से पाठकों को तीर्थ का ठीक परिचय हो सकेगा।

इतिशम्।

विनीत

कामता प्रसाद जैन

अलीगंज

३१-१०-५५

Stromaties, III. 164, The Brahmans neither eat any thing having life nor drink wine..... But those Indians, who are called sempoc (Sramana) go naked all their lives, these practice truth etc.

- Mc Crindle's Ancient India (1091) p. 12

यदि श्रमण जैनों में वस्त्रधारी साधु भी होते तो यूनानी यह न लिखते कि श्रमण जीवन भर नंगे रहते थे।

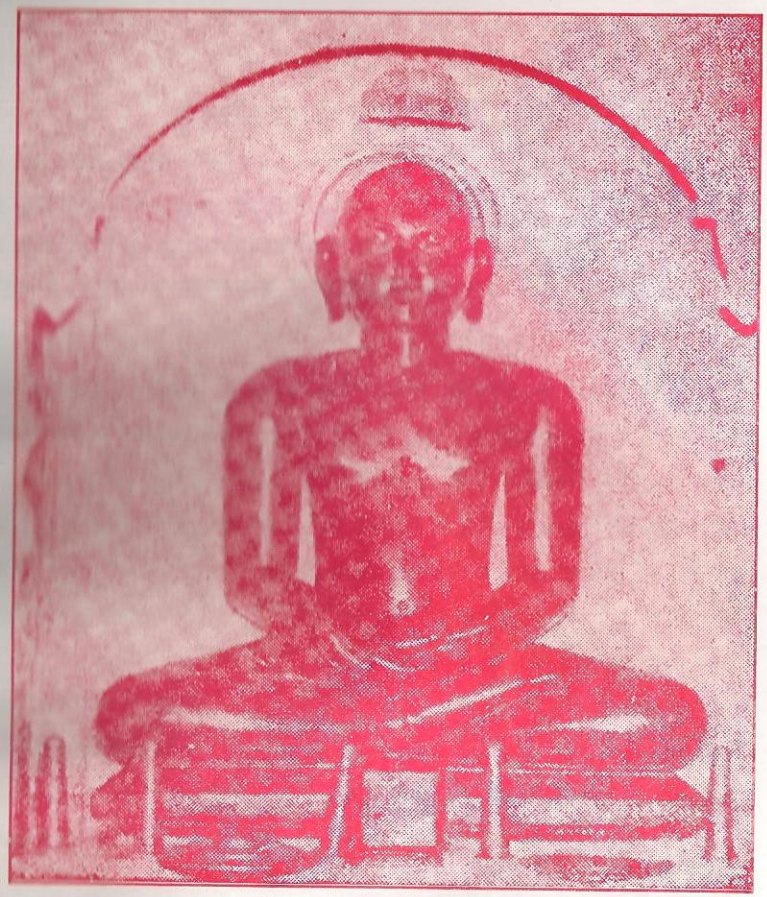

श्री १००८ नेमीनाथ भगवान्

गिरनार गौरव

(१)

महान मंगल-क्षेत्र

''ककुद भुवः खचरयोषि दुषिशिखतरैरलंकृतः।
मेघपटल परिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा।१२७॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिवितहृदयैः परितो भृशमूर्ज्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः॥१२८॥

-वृहत्स्वयम्भू स्तोत

ऐसा लगता है कि भगवत समन्तभद्र स्वामी जब गिरनार पहुँचे, तो वे पर्वत की पवित्रता और महानता देखकर आत्माहलाद से विभोर हो गए और इस पवित्रपूत घटना का उल्लेख उन्होंने भ. नेमिनाथ की स्तुति में किया। उन्होंने लिखा है कि ''ऊर्जयन्त ! तू कितना सुन्दर है क्योंकि तू पृथ्वी का वैसा समुन्नत भाग है जैसा कि बैल के शरीर में ककुद होता है- अथवा यूं कहिये कि वृष= धर्म का आगार होने के कारण तू महान है। तेरी शिखिरों पर सदा ही विद्याधर दम्पति विचरण करते हैं। तू इतना ऊँचा और विशाल है कि मेघपटल तेरे तटभाग को ही छू पाते हैं- तेरे निम्न भाग में मंडराते रहते हैं। तेरे पवित्र गात पर स्वयं इन्द्र ने वज्रकर्ण तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि के कल्याणकों के पवन प्रतीक अंकित किए। इस प्रकार है पर्वत तू आज भी धर्मार्जन का एक ऐसा साधन तीर्थ बना हुआ है कि तू अपनी ओर उन पूज्य ऋषियों और मुनियों को आकर्षित करता है, जिनका हृदय प्रेम से ओत-प्रोत है। हे ऊर्जयन्त ! धर्म-तीर्थ होने के कारण तू अचल है।''

निःसन्देह आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने गिरनार का गुणगान ठीक ही किया है। सचमुच गिरनार महान है! किन्तु उसकी महानता बड़े-बड़े राजाओं के राजनगर की तरह नश्वर नहीं है- वह स्थायी है। क्योंकि वह पवित्र है, उसमें नैसर्गिकता है और वस्तु का स्वभाव मिटता नहीं। सन् १९४० ई. में श्रवणवेलगोल के महामस्तकाभिषेकोत्सव से लौटते हुए जब हमने

पहले-पहले गिरिराज के दर्शन किए, तो हम उसकी महानता देखकर आत्म विभोर हो गये। गिरिराज की महानता ने आत्मा की महानता का बोध कराया। आत्मा की शक्ति तो अपार है, तभी तो भक्त चाहे नन्हा-सा बालक ही क्यों न हो? मजे-मजे में गिरनार की ऊँचाई को लांघ जाता है और प्रसन्न होता है। आत्मा की शक्ति वहाँ नहीं निबटती, यदि गिरनार और ऊँचा होता गया तो भी भक्त उसे लांघ जाता। गिरनार की महानता हमें अपनी आत्मा की महानता का बोध कराती है!

'सोरठ के महल' द्वार पर जब हम पहुँचे, तो जरा रूके और मुड़कर नीचे को देखा। ब्रह्ममुहूर्त की पावन बेला क्षितिज में से झांक रही थी। दूर-दूर तक शान्त निस्तब्धता छाई हुई थी, जो पवन के झोंकों से कभी-कभी भंग हो जाती थी। नीचे जूनागढ़ बिजली के कृत्रिम प्रकाश के आलोक में बहका हुआ पड़ा था। देखते-देखते वह हमारी दृष्टि से ओझल हो गया। हमारे और उसके बीच में सफेद बादलों का परदा पड़ गया। उस परदे के ऊपर गिरनार के अंक में बैठे हुए हम उन बादलों से अलिप्त थे क्योंकि वे बादल गिरनार के तलभाग में भी मंडरा रहे थे। संसार में भटकता हुआ जीव भी तो कर्म पटलों की परिधि से इसी प्रकार परे और अछूता रहता है, वह हृदय मानो इस सत्य को ही हृदयंगम करना चाहता था। आचार्य प्रवर स्वामी समन्तभद्रजी को संभवतः गिरनार के इस नैसर्गिक सौन्दर्य- 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का आभास हुआ था- इसीसे उन्होंने इसका उल्लेख उक्त श्लोकों में किया है। बस यही तो गिरनार की महानता है।

गिरनार पृथ्वीतल का सुन्दर समुन्नत भाग होने के साथ ही धर्म तत्व का अर्जन करने के लिए साधन भी है, वह तीर्थ जो है यही आचार्य कहते हैं और ठीक कहते हैं। अभी सन १९५२ में पुनः श्रवणबेलगोल की वन्दना को जाते हुए हमने गिरनार के दर्शन किए और लौटते में भी उसकी छाया में वहाँ बैठ गए, जहाँ पर गिरिराज के पार्श्वभाग में एक दिगम्बर जैन मूर्ति और धरणेन्द्र पद्मावती सहित भ. पार्श्व की प्रतिमा उत्कीर्ण है। वहाँ से हमने गिरनार को भर आंखों देखा। एक बार नहीं, कई बार और हमने उसका प्रत्येक क्षण नया रूप पाया। वस्तु का परिणमन क्षणवर्ती है, ऋजुसूत्रनय के आलोक में हमें अपने रूप में भी तो ऐसे ही परिवर्तन होते दिखते हैं- भावों की तरतमता में हम ऊपर नीचे ढुलते रहते हैं। गिरिराज का दर्शन पवित्र भावों को जागृत करके मन के मल को धो देता है- यह हमने अनुभव किया और तब मुँह से निकला 'निःसन्देह गिरनार मंगल क्षेत्र है।'

दूसरे क्षण माथा ठनका और प्रश्न उठा कि इस क्षेत्र में यह विशेषता क्यों? भक्त हृदय बोला- यह तीर्थ जो है। भगवान नेमि और सती राजुल के त्याग और वैराग्य से पवित्र हो चुका है। तीर्थङ्कर भगवान के जीवन में केवल ज्ञान कल्याणक का महत्व सर्वोपरि है। अज्ञानता इस अवसर पर समूल नष्ट होती और ज्ञान साकार चमकता है। तभी तो कहा है कि हजारों सूर्यों के प्रकाश से अधिक प्रकाश तीर्थङ्कर प्रभू का होता है। तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि को अनन्त

ज्ञान की प्राप्ति यहीं हुई। गिरनार पर ही वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी जीवन मुक्त परमात्मा होकर चमके। लोगों ने आंखों से यह देखा और उनको अपनी आत्मा की अनन्त शक्ति पर विश्वास हुआ। भ. नेमि ने जब अपना पहला उपदेश यहाँ दिया तो अनेक भव्य जीव उसे सुनकर प्रबुद्ध हुए- वे पुण्यशाली थे, प्रभु नेमि के निकट उन्होंने मुनि और श्रावक के नियमों को पालने की प्रतिज्ञा ली। नारायण कृष्ण ने तो द्वारिका भर में घोषणा कर दी थी कि जो आत्मा का कल्याण करना चाहता हो तो वह भ. अरिष्टनेमि के पास जाकर दीक्षित हो जावे। इस घोषणा को सुनकर उनके रनवास में धर्मभाव की लहर दौड़ गई थी। रुक्मिणी आदि रानियाँ और प्रद्युम्नकुमार आदि राजकुमार गिरनार पर भ. अरिष्टनेमि की वन्दना करने गए। उनके जयघोष से दिशाएं गूंज उठीं। जिधर कान लगाइए उधर से एक ही ध्वनि सुनाई पड़ती थी- आकाश के कण-कण से और पत्तों की प्रत्येक सिहरन से यही सुनाई देता था-

अर्हन्त मङ्गलं ! अर्हन्त लोगोतमा !!
अर्हन्त सरणं पवज्जामि !!

अल्पकाल में ही अठारह हजार महाभाग प्रभू नेमि के संघ में मुनिव्रत पालने लगे और चालीस हजार महात्मा मनीषी आर्यिकायें आत्मा की शोध में लीन हो गईं। लाखों श्रावक और श्राविकायें यम नियमों का अभ्यास करने लगे। सबका ज्ञानोदय जो हुआ था, सबमें आत्मश्रद्धा जो जगी थी, सबने साक्षात जो अनुभव किया था कि जीवन-साकल्य की ठीक प्रेरणा अन्तर से ही मिलती है- आत्मबल के सहारे ही मानव अपने जीवन में सफल होता है? ज्ञान के बिना चाहे लौकिक उत्थान हो अथवा आत्मोकर्ष का पावन अनुष्ठान कुछ भी सफल नहीं होता! इसीलिए तो गिरनार का कण-कण पवित्र हो गया है, क्योंकि ज्ञानमयी महत्तर दिव्य ध्वनि की पावनधारा में वह कई बार डुबकियाँ लगा चुकी है। पवन के झोकों के साथ वह गुनगुना उठता है।

ज्ञान समान न आन जगत में सुख का कारण।
यह परमामृत जन्म जरा मृतु रोग निवारण॥

निस्सन्देह गिरनार हमें परमामृत का रसपान कराने में निमित्तभूत है। प्रशस्त श्रम का पाठ वह हमें पढ़ा रहा है, अपने पावन गान में वह महाश्रमण तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि-केवली प्रद्युम्न और शम्भु आदि की मूर्तियों और चरणचिन्हों को अवधारण किए हुए है। उनके दर्शन करते ही हमें बोध होता है कि उन महापुरुषों ने यहाँ तप तपा था- ध्यान माढ़ा था- उपदेश दिया और सिद्ध पद को पाया था। वह सिद्ध क्षेत्र है, इसलिए तीर्थ है- उसके सहारे भक्त संसार-सागर को तिर कर उस पार पहुँच कर शाश्वत सुख में मगन हो जाता है। सभी प्रकार का मल धुल जाता है और अलौकिक सौन्दर्य निखर आता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म की आराधना और अनुभव ही लोकोत्तर शुचिता सौन्दर्य की

आधारशिला है। यह रत्नत्रय धर्म गिरनार पर एकत्रित हुआ ऋषियों और मुनियों के अनुष्ठानों में मूर्तमान होता आया है। अतएव गिरनार जैसे तीर्थ ही इस कारण लोकोत्तर शुचिता और सौन्दर्य पाने के योग्य उपाय हैं- प्रबल निमित्त हैं।[1] और यही वह कारण है जिससे कैलाश, सम्मेदाचल, ऊर्जयन्त (गिरनार), पावापुर आदि तीर्थ 'मंगल क्षेत्र' कहे गए हैं।[2] इन मंगल क्षेत्रों को विधिवत पूजन करने का उपदेश इसलिए शास्त्रकारों ने दिया है कि उनके अञ्चल में धर्म साधना की उपलब्धि विशेष होती है। श्री वसुनन्दि आचार्य लिखते हैं-

'जिण जणम णिक्खवण णाणप्पत्ति-मोख्खसंपत्ति।
णिलिहीलु खेतपूजा; पुव्वविहाणोण कायव्वा।।४५२।।'

-श्रावकाचारः पृष्ठ ७८

अर्थात्- जिनेन्द्र की जन्मभूमि, दीक्षाभूमि, केवल ज्ञान उत्पन्न होने की भूमि और निसिही यानी मोक्ष प्राप्त होने की भूमि-इन स्थानों में पूर्व कही हुई विधि के अनुसार (जल चन्दादि से) पूजा करना इसका नाम क्षेत्र पूजा है। यह क्षेत्र पूजा मानव के लिए आत्म-शुद्धि का प्रेरक निमित्त बनती है।

अतएव योगियों की योगनिष्ठा, ज्ञान ध्यान और तपश्चरण से पवित्रपूत ये तारक-यान हैं ! उस पर गिरनार पर्वत सिद्धक्षेत्र निर्वाण भूमि तो महामंगलमय मंगल क्षेत्र महातीर्थ है, क्योंकि उस पर से अगणित पुराण-पुरुष ध्यान करके सिद्ध हुए हैं ! यहाँ ध्यान की सिद्धि विशेष होती है। यही कारण है कि भव्यजीव निरन्तर गिरनार की शरण में पहुँचते हैं, वहाँ ध्यान माढ़कर पापमल को धोते हैं। अतः जय हो महा-महिमा-मय मंगलमय ऊर्जयन्त-गिरनार की ! आइये उसके दर्शन करें। उसकी गगन चुम्बी चोटियों पर चढ़कर आत्मशक्ति की महानता का बोध प्राप्त करें। कुमार अवस्था में भ. अरिष्टनेमि और नारायण कृष्ण ने रैवत पर ही आनन्द-रेलियाँ की, उनकी स्मृति गंगा में आइए और आनन्द की डुबकी लगाइए। सती राजमती के त्याग और तप का दर्शन भी ऊर्जयन्त की गुफा में कीजिए। यहाँ की चन्द्र गुफा में श्रीधरसेनाचार्य ने और काचन गुफा में श्री बीरसेन स्वामी ने तप-तपा और पवित्र बनाया। यह सभी कुछ आगे देखिए।

---

1 'तत्रात्मनोविशुद्ध ध्यान जल प्रक्षालित कर्ममल कलकस्य स्वात्मन्यवस्थान' लोकोत्तर शुचित्वं तत्साधनानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रं तपाँसि तद्वन्तश्च साधवस्तद्रधिष्ठानर्मन च निर्वाणझूम्यादिकानि-तत्प्राप्युपायत्वात शुचिव्यपदेश मर्हन्ति।' – चरित्रसार पृ. १८०

2 क्षेत्रमङ्गलमूर्जयन्तादिकमहै दादीना,
निष्क्रमण केवलज्ञानादि गुणोत्तपतिस्थानम्। – गोम्मटसार

(२)

इतिहास के अञ्चल में

'मा मा गर्वममर्त्य पर्वत परां प्रीति भजन्तस्त्वया।
भ्राम्यन्ते रविचन्द्रमः प्रभृतयः के के न मुग्धाशयः।।
एको रैवतभूधरो विजयतां यद्दर्शनात् प्राणिनो।
यांति भ्रांति विवर्जितः किल महानन्द सुखश्रीजुषः।।'

-रा मण्डलीक का शिलालेख

'हे अमर पर्वत ! गर्व मत करो, सूर्य-चन्द्र नक्षत्र तुम्हारे प्रेम में ऐसे मुग्ध हुए कि रास्ता चलना भूल गए हैं, (तुम्हारी ही प्रदक्षिणा देते हैं) किन्तु वही क्यों? ऐसा कौन है जो तुम पर मुग्ध न हो। जय हो, एक मात्र पर्वत रैवत (गिरनार) की जिसके दर्शन करने से लोग भ्रांति को खोकर आनन्द का भोग करते और परम सुख को पाते हैं।' पाषाण पट पर उत्कीर्ण गिरनार की यह गौरव गरिमा इतिहास के अंचल में उसकी कीर्ति की घोषणा आनन्द का भोग करते और परम सुख को पाते हैं। पाषाण पट पर उत्कीर्ण कर रही है।

भारत का प्रामाणिक इतिहास शिशुनागवंश के राजाओं में प्रमुख नरेश महा मण्डलेश्वर श्री श्रेणिक बिम्बसार से प्रारम्भ होना माना गया है। यद्यपि मोइनाजोदड़ो के पुरातत्व ने भारतीय इतिहास की अवधि को बहुत आगे बढ़ा दिया है, परन्तु अभी ऐसे साधन उपलब्ध नहीं हैं कि जिनके सहारे उनके इतिहास की कालगणना की जा सके। अतः सम्राट श्रेणिक बिम्बसार के समय से ही इस गिरनार को लोग क्या और कैसा मानते थे, यह देखिए।

मगध के यह सम्राट श्रेणिक बिम्बसार अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान वर्द्धमान महावीर के अनन्य भक्त थे। भ. महावीर जब-जब राजगृह आये और विपुल अथवा वैभार पर्वत शिखरों पर उनका समवशरण अवतरा, तब श्रेणिक उनकी वन्दना करने गए और खूब ही धर्म चर्चा करते रहे, उनके प्रश्नों के उत्तर स्वरूप ऐसे बहुत से प्रकरण मिलते हैं, जो इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन प्रश्नोत्तरों में हमें गिरनार का भी उल्लेख मिलता है।

एक बार श्रेणिक बिम्बसार विपुलाचल पर भगवान महावीर की वन्दना करने गए और उनने प्रश्न किया कि प्रभो ! गिरनार-ऊर्जयन्त का महात्म्य क्या है? तीर्थङ्कर की दिव्य ध्वनि में उन्होंने जो उत्तर सुना उसे, सुनकर श्रेणिक और श्रोता कृतकृत्य हो गए। सबने जाना कि जहाँ दुष्कर्मों पर विजय पाई जाती है वह ऊर्जयन्त है और वह द्वारिका के पास सोरठ (सौराष्ट्र)

---

1 अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ३३-५४

आधारशिला है। यह रत्नत्रय धर्म गिरनार पर एकत्रित हुआ ऋषियों और मुनियों के अनुष्ठानों में मूर्तमान होता आया है। अतएव गिरनार जैसे तीर्थ ही इस कारण लोकोत्तर शुचिता और सौन्दर्य पाने के योग्य उपाय हैं- प्रबल निमित्त हैं।[1] और यही वह कारण है जिससे कैलाश सम्मेदाचल, ऊर्जयन्त (गिरनार), पावापुर आदि तीर्थ 'मंगल क्षेत्र' कहे गए हैं।[2] इन मंगल क्षेत्रों को विधिवत पूजन करने का उपदेश इसलिए शास्त्रकारों ने दिया है कि उनके अञ्चल में धर्म साधना की उपलब्धि विशेष होती है। श्री वसुनन्दि आचार्य लिखते हैं-

'जिण जणम णिक्खवण णाणप्पत्ति-मोक्खसंपत्ति।
णिलिहीलु खेतपूजा; पुव्वविहाणोण कायव्वा ॥४५२॥'

-श्रावकाचार: पृष्ठ ७८

अर्थात्- जिनेन्द्र की जन्मभूमि, दीक्षाभूमि, केवल ज्ञान उत्पन्न होने की भूमि और निसिही यानी मोक्ष प्राप्त होने की भूमि-इन स्थानों में पूर्व कही हुई विधि के अनुसार (जल चन्दादि से) पूजा करना इसका नाम क्षेत्र पूजा है। यह क्षेत्र पूजा मानव के लिए आत्म-शुद्धि का प्रेरक निमित्त बनती है।

अतएव योगियों की योगनिष्ठा, ज्ञान ध्यान और तपश्चरण से पवित्रपूत ये तारक-यान हैं ! उस पर गिरनार पर्वत सिद्धक्षेत्र निर्वाण भूमि तो महामंगलमय मंगल क्षेत्र महातीर्थ है, क्योंकि उस पर से अगणित पुराण-पुरुष ध्यान करके सिद्ध हुए हैं ! यहाँ ध्यान की सिद्धि विशेष होती है। यही कारण है कि भव्यजीव निरन्तर गिरनार की शरण में पहुँचते हैं, वहाँ ध्यान माढ़कर पापमल को धोते हैं। अतः जय हो महा-महिमा-मय मंगलमय ऊर्जयन्त-गिरनार की ! आइये उसके दर्शन करें। उसकी गगन चुम्बी चोटियों पर चढ़कर आत्मशक्ति की महानता का बोध प्राप्त करें। कुमार अवस्था में भ. अरिष्टनेमि और नारायण कृष्ण ने रैवत पर ही आनन्द-रेलियाँ की, उनकी स्मृति गंगा में आइए और आनन्द की डुबकी लगाइए। सती राजमती के त्याग और तप का दर्शन भी ऊर्जयन्त की गुफा में कीजिए। यहाँ की चन्द्र गुफा में श्रीधरसेनाचार्य ने और काचन गुफा में श्री बीरसेन स्वामी ने तप-तपा और पवित्र बनाया। यह सभी कुछ आगे देखिए।

---

1 'तत्रात्मनोविशुद्ध ध्यान जल प्रक्षालित कर्ममल कलकस्य स्वात्मन्यवस्थान' लोकोत्तर शुचित्वं तत्साधनानि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रं तपाँसि तद्वन्तश्च साधवस्तद्रधिष्ठानर्मन च निर्वाणझूम्यादिकानि-तत्प्रापयुपायत्वात शुचिव्यपदेश मर्हन्ति।' – चरित्रसार पृ. १८०

2 क्षेत्रमङ्गलमूर्जयन्तादिकमहै दादीनां,
निष्क्रमण केवलज्ञानादि गुणोत्तपतिस्थानम्। – गोम्मटसार

(२)

इतिहास के अञ्चल में

'सा मा गर्वममर्त्य पर्वत परां प्रीति भजन्तस्त्वया।
भ्राम्यन्ते रविचन्द्रमः प्रभृतयः के के न मुग्धाशयः॥
एको रैवतभूधरो विजयतां यद्दर्शनात् प्राणिनो।
यांति भ्रांति विवर्जितः किल महानन्द सुखश्रीजुषः॥'

-रा मण्डलीक का शिलालेख

'हे अमर पर्वत ! गर्व मत करो, सूर्य-चन्द्र नक्षत्र तुम्हारे प्रेम में ऐसे मुग्ध हुए कि रास्ता चलना भूल गए हैं, (तुम्हारी ही प्रदक्षिणा देते हैं) किन्तु वही क्यों? ऐसा कौन है जो तुम पर मुग्ध न हो। जय हो, एक मात्र पर्वत रैवत (गिरनार) की जिसके दर्शन करने से लोग भ्रांति को खोकर आनन्द का भोग करते और परम सुख को पाते हैं।' पाषाण पट पर उत्कीर्ण गिरनार की यह गौरव गरिमा इतिहास के अंचल में उसकी कीर्ति की घोषणा आनन्द का भोग करते और परम सुख को पाते हैं। पाषाण पट पर उत्कीर्ण कर रही है।

भारत का प्रामाणिक इतिहास शिशुनागवंश के राजाओं में प्रमुख नरेश महा मण्डलेश्वर श्री श्रेणिक बिम्बसार से प्रारम्भ होना माना गया है। यद्यपि मोइनाजोदड़ो के पुरातत्व ने भारतीय इतिहास की अवधि को बहुत आगे बढ़ा दिया है, परन्तु अभी ऐसे साधन उपलब्ध नहीं हैं कि जिनके सहारे उनके इतिहास की कालगणना की जा सके। अतः सम्राट श्रेणिक बिम्बसार के समय से ही इस गिरनार को लोग क्या और कैसा मानते थे, यह देखिए।

मगध के यह सम्राट श्रेणिक बिम्बसार अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान वर्द्धमान महावीर के अनन्य भक्त थे। भ. महावीर जब-जब राजगृह आये और विपुल अथवा वैभार पर्वत शिखरों पर उनका समवशरण अवतरा, तब श्रेणिक उनकी वन्दना करने गए और खूब ही धर्म चर्चा करते रहे, उनके प्रश्नों के उत्तर स्वरूप ऐसे बहुत से प्रकरण मिलते हैं, जो इतिहास के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन प्रश्नोत्तरों में हमें गिरनार का भी उल्लेख मिलता है।

एक बार श्रेणिक बिम्बसार विपुलाचल पर भगवान महावीर की वन्दना करने गए और उनसे प्रश्न किया कि प्रभो ! गिरनार-ऊर्जयन्त का महात्म्य क्या है? तीर्थङ्कर की दिव्य ध्वनि में उन्होंने जो उत्तर सुना उसे, सुनकर श्रेणिक और श्रोता कृतकृत्य हो गए। सबने जाना कि जहाँ दुष्कर्मों पर विजय पाई जाती है वह ऊर्जयन्त है और वह द्वारिका के पास सोरठ (सौराष्ट्र)

---

1 अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. ३३-५४

में है। भगवान के कणधर इन्द्रभूति गौतम ने उस प्रश्नोत्तर को लिपिबद्ध किया और आज हम उसे पुराण में पढ़ रहे हैं।

तीर्थङ्कर की दिव्य ध्वनि के वर्णन ने श्रोताओं को ऋषभ युग में पहुँचा दिया था। ऋषभ पहले तीर्थङ्कर और सभ्यता के आदि शिक्षक थे। उन्होंने कृषि आदि कर्म करना लोगों को बताये- नाना प्रकार के आविष्कार किए[1] इसलिए वे आदि ब्रह्मा और अवतार माने गए हैं।[2] उस कृषियुग (Agriculture Age) में ही भ. ऋषभ के पुत्र भरत महाराज पहले चक्रवर्ती सम्राट हुए थे जिनके नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाया।[3] जब सम्राट भरत दिग्विजय करने निकले तो उन्होंने सौराष्ट्र में भी सम्मान प्राप्त किया और गिरनार-ऊर्जयन्त की वन्दना को गए। भरत ने विचारा कि आगे चलकर इस भरत क्षेत्र में तेईस तीर्थङ्कर और- पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने उन तीर्थङ्करों के विषय में सब कुछ बता दिया है। इस ऊर्जयन्त पर्वत पर बाईसवें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि तप-तपेंगे, ज्ञानी होंगे और मुक्त भी होंगे। यह भावी घटना विचार कर भरत ने तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि का स्मरण और नमस्कार किया तथा ऊर्जयन्त की परिक्रमा की।[4] इस प्रकार गिरनार का पहला उल्लेख ऋषभ-युग में मिलता है।

ऊर्जयन्त की पवित्रता की गूँज विविध काल-क्षेत्र में गूँजती रहीं जिससे अनेक विद्याधरों, द्राविणों और असुरों को आकृष्ट किया। वे निरन्तर ऊर्जयन्त पर विचारते और तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि की जीवनी को याद करके अपवर्ग के लिए पुरुषार्थी बनते थे। तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि ने ही ऊर्जयन्त को तीर्थ बनाया था। न वे उस पर तप तपते, उपदेश देते और मुक्त होते न वह तीर्थ बनता ! नारायण कृष्ण और बलराम भी अपने परिजनों सहित ऊर्जयन्त पर बिचरे और भगवान की वन्दना करने आए थे। स्वामी समन्तभद्रजी ने लिखा है-

'द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरण जटिलांशुमण्डलः।
नीलजलदजलराशिवपुः सहबन्धुभिगरुड़केतुरीश्वरः ॥'

---

1 'अहिंसा-वाणी' का ऋषभ विशेषांक देखो।

2 हिन्दू पुराण 'भागवत' (अ. ५) में ऋषभ को आठवाँ अवतार लिखा है।

3 येषां खलु महायोगी भवतो ज्येष्ठः श्रेष्ठ गुण आसोद्येनन्द -
वर्ष भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥९॥ – श्रीमद्भागवत ५.४
ततश्च भारतं वर्ष मेतल्लोकेषु गीयते
भारताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम्। – विष्णुपुराण

4 नृपान सौराष्ट्र कानुष्ट्र बामीशतभृतोपदान्
स भाजयन् प्रभुभेजे रम्त रवैत कस्थली ॥१०॥
सुराष्ट्रेयूर्जयन्ताद्रिम् अद्रिराजमिबोच्छितम्।
यमो प्रदक्षिणी कृत्यभावितीर्थ मनुस्मन् ॥१०२॥ – महापुराण त्रिशत्तम् पर्व

'हे प्रभो, जिनके शरीर की कांति प्रभावान सूर्यमण्डल की किरणों से व्याप्त है और जो सौन्दर्य में नीलकमल पत्तों की भाँति है, उन पृथ्वीपति गरुड़-ध्वज कृष्ण वासुदेव ने भी अपने बन्धुओं सहित आपको नमस्कार किया है।'

'हल भृच्च ते स्वजनभक्ति मुदित हृदयौ जिनेश्वरौ।
धर्म विनयरसिकौ सुतरा चरणारविंदयुगलं प्रणमेतुः ॥'

'लोक के स्वामी और बन्धुजनों की भक्ति में मुदित हृदय एवं धर्मविनय के रसिक हलधर-बलभद्र ने भी आपके युगलचरणारबिन्दको नमस्कार किया है।

ऐसे-ऐसे महापुरुषों की चरणरज से गिरनार पवित्र हुआ और उसकी धवलकीर्ति दूर-दूर देशों तक फैली। 'सू' जाति के राष्ट्रिकों और उनके सूराष्ट्र (सौराष्ट्र) का वह मुकुटमणि बना। सूराष्ट्र के बड़े वणिक भ. अरिष्टनेमि के अनन्य भक्त थे उन्होंने विदेशों में जाकर नए उपनिवेश बसाए और अहिंसा संस्कृति को फैलाया।[1] उनके शासक भी जिनेन्द्र भक्त हुए। कहते हैं, बाबुल (Babylonia) के नरेश नभश्चन्द्र (Nebuschadezzar) रैवत पर्वत पर भ. नेमि की वन्दना करने आए थे और वहाँ १ मंदिर बनवाया था।[2]

नागवंश के अग्रणी कामदेव नागकुमार भी ऊर्जयन्त की वन्दना करने आए थे और गिरनार में रहे थे।[3] भ. पार्श्वनाथ के समय में भी मुनि और श्रावक इस तीर्थ की वन्दना करके अपने भाग्य को सराहते। राजा करकन्दु गिरिनयर में आकर ठहरे और यहाँ की राजकुमारी के साथ उनका विवाह हुआ था।[4]

भ. महावीर के समकालीन राजा उदयन वीतभय नगर में राज्य करते थे। वे भी गिरनार की ओर आकृष्ट हुए प्रतीत होते। उदयन के पश्चात सिन्धु और सौराष्ट्र पर मौर्य चन्द्रगुप्त का अधिकार हो गया था और अपने अन्तिम जीवन में वह भी गिरनार पर अपने गुरु भद्रबाहु स्वामी के साथ वन्दना करने पधारे थे।[5] इसके पूर्व चन्द्रगुप्त के साले स्येनपुष्प गुप्त ने यहां 'सुदर्शन'

---

1 ऋषभदेव के साले सु-कच्छ देश के थे जो विजयार्द्ध पर जाकर बसे थे। उपरान्त जैन सम्राट सुवीर भी प्रसिद्ध हुये। विशेष के लिए 'विशाल भारत' भा. १८ अङ्क ५ पृ. ६२६ पर प्रकाशित 'सुमेर सभ्यता की जन्मभूमि भारत' शीर्षक लेख देखिए।
– संक्षिप्त जैन इतिहास, भा. ३ खंड पृ. ७०-७८

2 सं. जै. इ., भा. खण्ड १ पृ. ७३

3 नागकुमार चरित (कारंजा सीरिज) पृ. ७७

4 करकण्ड चरिउ (कारंजा) पृ. २५

5 'गिरि उज्जयन्तसिहरे णाणविहु मुणिवरिन्द संपुण्णो चउविह संघेण जुदं।
सुयसागर पाणां धीर सिरि भद्दबाहु सामि णमिसिता गुत्ति-गुत्ति मुणिणीहि
परिपुच्छियं पसत्थ अर्द्ध परढ्ढावणं जयणो।' – भद्रबाहुसंहिता

नाम की झील बनाई थी।[1] भद्रबाहु स्वामी के गुरु गोवर्धन स्वामी भी संघ सहित गिरनार की यात्रा करने आए थे और रेवताचल पर ठहरे थे। भद्रबाहु भी इस संघ में सम्मिलित थे।[2] निःसन्देह प्रारम्भ से ही गिरनार दिगम्बर जैन मुनियों और ऋषियों का केन्द्र रहा है।

एक समय ऊर्जयन्त पर्वत की पलासिनी-स्वर्ण रेखा आदि नदियों में इतनी जोर की बाढ़ आई कि उससे सुदर्शन झील का बांध टूट गया। उस समय इतने जोर का तूफान आया कि उसके कारण पर्वत की शिखरें, दीवालें, इमारतें और वृक्षादि सब गिर गए थे। मौर्यो के पश्चात यहाँ जब छत्रपवंश राजाओं का अधिकार हुआ तो रुद्रदामा ने सुदर्शन झील आदि का जीर्णोद्धार कराकर शिलालेख अङ्कित कराया था।[3]

चन्द्रगुप्त के पश्चात मौर्य सम्राटों में अशोक, सम्प्रति और सालिसूक गिरनार को भुला न सके। उन्होंने अहिंसा धर्म का प्रचार किया। सम्प्रति ने भ. नेमिनाथ का नयाभिराम मन्दिर बनवाया था। संभवतः वह उपर्युल्लिखित तूफान में नष्ट हो गया था। जो हो उसके नाम का जैन मन्दिर आज भी गिरनार पर मौजूद है। 'गर्ग संहिता' से स्पष्ट है कि अन्तिम मौर्य सम्राटों में सालिसूक ने भी जैन धर्म का प्रचार सौराष्ट्र में किया था।[4] तब वह गिरनार को भला कैसे भुला सके होंगे? उनके बाबा सम्राट अशोक तो यहाँ पर आकर पूरे शाकाहारी बने थे- उन्होंने गिरनार की चट्टान पर धर्मलेख खुदवाये और उनके द्वारा जनता को अहिंसा धर्म की शिक्षा युग-युग के लिए प्रदान की। उन्होंने घोषित किया कि-

''यह धर्म लेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ने लिखवाया है। यहाँ (इस राज्य में) कोई जीव मारकर होम न किया जाए और न (हिंसावर्द्धक) समाज (उत्सव) किया जाए, क्योंकि देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में बहुत दोष देखते हैं। तथापि एक प्रकार के ऐसे (अहिंसक) समाज उत्सव हैं, जिन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ही पसन्द करते हैं। पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की पाठशाला में प्रतिदिन कई सहस्र जीव सूप (शोरवा) के लिए मारे जाते थे। पर आज से जब कि यह धर्म लेख लिखा जा रहा है। केवल तीन ही जीव मारे जाते (अर्थात्) दो मोर एक मृगः पर मृग का मारा जाना नियत नहीं है। यह तीनों प्राणी भी भविष्य में नहीं मारे जाएंगे।''

1 Bargess, The Report on the Antiquities of Kathiawad and Kacchha. P. 129 (आगे Report लिखेंगे।)

2 चिकीपुर्नेमितीर्थेशयात्रां रैवतकाचले। – भद्रबाहु चरित पृ. १३
और दिगम्बरत्न और दिगम्बर मुनि – पृ. १०७-१८४

3 Report P. 129

4 संक्षिप्त जैन इतिहास, भा. २ खंड २ पृ. ६ (सूक्ष्मरूप सं. जै. इ.)

ऐसा लगता है अशोक गिरनार आए, तो तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि के आदर्श जीवन से इतने प्रभावित हुए कि पूर्ण अहिंसक बन गए। उनकी यह अहिंसक मनोवृत्ति सर्वथा जैन अहिंसा ही के अनुरूप है। डॉ. कर्नल ने लिखा था कि अशोक की अहिंसा बौद्धों की अपेक्षा जैनों की अहिंसा के अनुकूल है। अहिंसा ही क्या? अशोक के धर्म लेखों की बहुत-सी बातें जैनों के ही अनुरूप है। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक अपने अन्तिम जीवन में जैन धर्म से अत्यधिक प्रभावित हुए। सम्भवतः जैन मुनि हो गए थे और उन्होंने निर्ग्रन्थ मुनियों के लिए गुफाएं भी बनवाई थी।[1]

छत्रपवंश के राजाओं के अधिकार में जब गिरनार रहा तब भी वहाँ जैन-धर्म का उत्कर्ष होता रहा था। महाछत्रप नहपान जैन धर्म की ओर आकृष्ट हुए थे और प्रभावित हुए। सम्भवतः जैन मुनि हो गए थे।[2] उनके वंशज छत्रप रुद्रसिंह ने गिरनार में निर्ग्रंथ दिगम्बर जैन मुनियों के लिए गुफाएं बनवाई थी।[3] आचार्य कुन्दकुन्द भी यहाँ पधारे थे और श्रीधरसेनाचार्य तो यहाँ रहते ही थे।

गुप्त सम्राटों ने यहाँ सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार कराया था। उपरान्त आठवीं-नवीं शताब्दि में सिन्धुदेश से यहाँ आकर चूड़ासमास वंश के राजाओं ने गिरनार पर अधिकार जमाया था। चूंकि प्राचीनकाल से गिरनार पर दिगम्बर जैन मुनियों का आवास रहा और दि. जैन मुनि-संघ लोक कल्याण में निरत रहा, अतः चूड़ासमास वंश के राजा भी उनके भक्त हो गए थे। उनमें से खण्डार, मंडलीक आदि तो जैन धर्म की प्रभावना में चन्द्रगुप्त अथवा सम्प्रति की होड़ करने लगे थे। दुर्भाग्यवश जब जैन धर्म में सम्प्रदायवाद का भेद विष पड़ा तो उसकी आत्मा विकल हो गई और वह अपना एकाग्र रूप खो बैठा। जैन दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों में बँट गए। कैसे बँटे इसका विवरण यथास्थान आगे पढ़िये। यहाँ तो हमें रा खंगार की जिन भक्ति का परिचय देना अभीष्ट है। जब श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने गिरनार से दिगम्बरों को हटाकर अपना अधिकार जमाना चाहा तो रा खंगार उनके संघपति धाराक के सामने आ डटे-धार उनके सम्मुख टिक न सके और परास्त होकर वापस चले गए। रा खंगार अपने इस सुकृत के कारण दि. जैन धर्म के इतिहास में अमर हो गए।[4] इन्हीं के वंश में रा मंडलीक हुए, जो भ. नेमि के अनन्य भक्त थे। उन्होंने गिरनार पर एक नयनाभिराम स्वर्णखचित जिन मन्दिर बनाया था, जिसमें उन्होंने भ. नेमि की प्रतिमा विराजमान की थी।[5]

1 प्रथम शिलालेख-अशोक के धर्मलेख, पृ. ११०

2 सम्राट अशोक और जैन धर्म नामक हमारा ट्रेक्ट देखिए।

3 सं. जै.इ., भाग २, खण्ड २, पृ. २१-२६

4 Burgess; The Report pp. 141-143

5 जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ६ किरण ३ पृ. ३, १९५२-१९५३

चूड़ासमास वंश के पश्चात गिरनार अणहिलवार पट्टन के सोलंकी राजाओं के अधिका में आ गया। सिद्धराज ने रा खंगार की पत्नी रानिकदेवी के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उ अपने रनवास के बुरे संकल्प से गढ़ गिरनार पर आक्रमण किया था। यद्यपि रा खंगार इ युद्ध में खेत रहे, परन्तु रानिकदेवी सिद्धराज को नहीं मिली। वह अपने शील धर्म की रक्ष के लिए प्राणों पर खेल गई। सिद्धराज ने सज्जन नामक एक श्वेताम्बर जैन धर्मानुयाय राजमन्त्री को गिरनार का शासक नियुक्त किया, जिन्होंने राजकोष का सभी रुपया गिरना पर मूल्यवान जिन मन्दिर बनाने में व्यय कर दिया। पहले तो सिद्धराज नाराज हुए परन्तु सज्ज के समझाने पर वह सन्तुष्ट हो गए।

सम्राट कुमारपाल गिरनार की वन्दना करने आए थे और उन्होंने यहाँ अपूर्व शिल सौन्दर्य के कलामय जिन मन्दिर बनाए थे। इस काल में दिगम्बर और श्वेताम्बर सभी जैन गिरनार की वन्दना करने आते रहे।

मुस्लिमकाल में गिरनार की व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। तो भी जैनों ने उसे अपन तीर्थ बराबर माना और निरन्तर वन्दना करने आए। दिल्ली के बादशाहों की अनुमति से से पूर्णचन्दजी आदि ने गिरनार यात्रा के संघ निकाले थे। अन्त में गिरनार ब्रिटिश शासन के अधिकार में आया और नवाब जूनागढ़ के संरक्षण में उसका उद्धार हुआ अब स्वतन्त्र भार में उसका गौरव है। उसके रूप और उसकी पवित्रता पर सभी मुग्ध हैं, सभी उससे सम्यक् आत्मबोध पाने और जीवमात्र पर दया करने की प्रेरणा लें, इसी में गिरनार का महत्व औ लोक का कल्याण है। इतिहास में वह सत्कर्मों के प्रतीत रूप में अमर है।

(३)

शिला लेखों के आलोक में

'श्री उज्जन्त गिरिराज मधि प्रतीते
सद्धर्म्म कर्म करणोद्यमिनां जनानां।
सानिध्यमोहिममो गुरुमेघनादा
लेशधियप्रभृतय-शाः सृजन्तु ॥५॥

-रा मण्डलीक का शिलालेख

'हे लोकनाथ ! तुम्हारी हितकारी वाणी मेघों के नाद के समान है, तुम श्री गिरिराज ऊर्जयन्त के प्रख्यात स्थान पर सद्धर्मकर्मरत भव्य पुरुष के हित के लिए आ विराजमान हुए हो। नि सन्देह प्रशस्ति लेखक गिरनार की महत्ता तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि की दिव्य ध्वनि वर्षा के कारण हुई ठीक ही बताते हैं। भगवान नेमि गिरनार पर आ विराजे और दुष्कर्मों को नष्ट करके सर्वज्ञ सर्वदर्शी बने, इसीलिए गिरनार अथवा रैवत सार्थक नाम ऊर्जयन्त की महानता पर मुग्ध हो गया और उसने अपनी भक्ति को पाषाण और ताम्रपटों पर अंकित करके अमर बना देना चाहा, हमें एक ओर प्राचीनकाल से ऐसे शिलालेख एवं ताम्रपत्र मिलते हैं, जिनमें तीर्थङ्कर नेमि और गिरिराज-गिरनार का ऊर्जयन्त अथवा रैवत नाम से बखान हुआ मिलता है।

ऐसे लेखों में काठियावाड़ के प्रभास पट्टन से मिला हुआ बाबुल (Babylonia) के बादशाह नभश्चन्द्र (Nebuschadezzar) का ताम्रपट लेख सर्व प्राचीन है। इसे डॉ. प्राणनाथ ने निम्न प्रकार पढ़ा।[1]

''रेवानगर के राज्य, स्वामी सुजोति का देव, नेबुचड नज्जर आया है वह यदुराज के नगर (द्वारिका) में आया है। उसने मन्दिर बनवाया सूर्य.....देवि नेमि की जो स्वर्ग समान रैवत पर्वत के देव हैं (उनको) हमेशा के लिए अर्पण किया।''

(जैन'- भावनगर भा. ३५ अंक १ पृ. २)

भ. नेमि के अति निकट काल तक ताम्रपट लेख हमें ले जाता है क्योंकि नभश्चन्द्र (Nebuschadezzar 1) का समय ११४० ई.पू. माना गया है। उस समय द्वारिका यादवों की राजधानी रही और रैवत पर्वत भ. नेमि के कारण पवित्र माना जाता था।

1 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' – १९ मार्च १९३५

मथुरा कंकाली टीला से जो प्राचीन जिन मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं; उनमें एक कुशल कालीन मूर्ति भ. अरिष्टनेमि की भी है, जिस पर लिखा है:-

''वर्ष १८ वर्षा ऋतु का २ रा महीना, १२वां दिन, ३ रा दिना की पुत्री मितशिरि (मित्रश्री) के दान रूप भ. अरिष्टनेमि की.....।''[1]

इसमें भ. अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता का आभास मिलता है। गिरनार पर एक प्राचीन लेख निम्न आशय का अंकित बताया गया है:-

''सं. ५८ वर्ये चैत्र वदी २ सोमे धारागंजे पं. नेमिचन्द्र शिष्य पंचाण चन्द्र मूर्ति।''[2]

इससे स्पष्ट है कि धारागञ्ज के पं. नेमिचन्द्र के शिष्य ने एक जिन मूर्ति गिरनार में स्थापित की थी।

गिरनार में जैन धर्म सम्बन्धी दूसरा सर्व प्राचीन लेख छत्रप रुद्रसिंह का है, इसका खण्ड भाग ही मिलता है, जिसे डॉ. बुल्हर ने इस प्रकार पढ़ा:-

''---------- क्त ---------- ण ---------- छत्रप -------- (स्वामि) चष्टनस्य प्र (पौ) त्रस्य राज्ञः क्षज्ञपस्य स्वामिजयदाम पौत्रस्य राज्ञो महाक्ष --------

(चैत्र) शुक्लपक्षस्य दिवसे पंचमे (५) इस गिरि नगरे देवासुर नाग यक्ष राक्षसेन्द्रि --------।

प्रक ? मिवप ------- केवलि ज्ञान प्राप्तानां जितजरामषणानां-। --------।[3]

इस लेख के विषय में डॉ. बर्जेस ने स्पष्ट लिखा था कि ''प्रस्तुत लेख में केवलिज्ञान संप्राप्तानां'' वाक्य महत्वपूर्ण है, जिसका प्रयोग जैन शास्त्रों में विशेष रूप से हैं। अतएव यह लेख जैनों का है। इससे प्रमाणित होता है कि गिरनार को इन गुफाओं को सौराष्ट्र शाही राजाओं ने जैनों के लिए ईस्वी द्वितीय शताब्दि के अन्तिम पद में खुदवाया था। संभव है- गुफायें लेख से प्राचीन है।[4] बर्जेस सा. का यह कथन सत्य को छू रहा है क्योंकि दिगम्बर जैन शास्त्रों से हमें ज्ञात होता है कि ईस्वी १ ली, २ री शताब्दि के लगभग गिरनार की चन्द्र गुफा में अङ्गज्ञान के ज्ञाता श्री धर सेनाचार्य रहते थे। उन्हें केवली भगवान का ज्ञान अर्थात अङ्गज्ञान प्राप्त था जिसका उद्धार उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्यों के सहयोग से लिपिबद्ध कराकर किया था। यह घटना ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को घटित हुई थी और दिगम्बर

1 जैन शिलालेख संग्रह (मा.चं.ग्र.) भाग पृ. २५

2 Asl. xvi, p. 357, n. 20, २० जैन शि. सं. पृ. १६

3 The Report P. 141

4 The Report P. 137

जैन संघ की एक महान घटना थी। अतः बहुत संभव है कि उक्त घटना का उल्लेख किया गया हो, क्योंकि उपरोक्त आचार्यगण केवलि ज्ञान सम्प्राप्तानं' थे ही और लेख की तिथि शुक्ल पक्ष की पञ्चमी है। मास का नाम स्पष्ट नहीं है। हो सकता है, जिसे बुल्हर सा. ने 'त्र' पढ़ा है वह अक्षर 'ष्ठ' हो। इस शिलालेख को पुनः पढ़ने की आवश्यकता है।

गुप्त वंश के राजाओं का शिला लेख भी गिरनार में है जिसमें गिरनार और सुदर्शन झील का उल्लेख है। ऊर्जयन्त गिरनार को मैत्री और प्रेम का प्रतीक मानते हुए लेखक ने लिखा है कि ऊर्जयन्त (गिरनार) ने पालासिनी आदि अपने नदी रूपी हाथों का मैत्री भाव सागर के प्रति बढ़ाकर उसके प्रति प्रेम की धारा ही बहा दी, परन्तु सुदर्शन झील में ऐसा तूफान आया कि लोग भयभीत हो गए और वह नष्ट हो गई। उसका जीर्णोद्धार कराया गया।[1]

गिरनार पर्वत पर भ. नेमिनाथ मन्दिर के दक्षिण ओर वाले प्रदेश द्वार के प्रांगण की पश्चिम दिशा में बने हुए एक छोटे मन्दिर की दीवाल पर टूटे हुए पाषाण पर निम्नलिखित लेख अङ्कित है जो संभवतः ९वीं १०वीं शताब्दी का है-

॥ स्वस्ति श्री धुति

॥ नमः श्री नेमिनाथायज

॥ वर्ष फाल्गुन शुदि ५ गुरौ श्री

॥ तिलक महाराज श्री महीपाल

॥ वयरसिंह भार्या फाउ सुतसा

॥ सुतसा साईआ सा. मेला-मेला

॥ जसुता रूढ़ी गाँगी प्रभृति

॥ नाथ प्रसादा कारिता प्राताष्ट

॥ --- द्रसूरि तत्पट्टे श्री मुनिसिंह

॥ कल्याणत्रय

1 "The most interesting the word kevali jnana Sampraptnam, – of those who have obtained the Knowledge of Kevaliss, which occurs most frequently in Jaina scriptures and denotes a Person who is possessed of the Kevalijnana of true Knowledge, which produces final emancipation. It would, therefore, seen that the inscription in of Jainas from this it would appeal that these caves were probably excavated for the Jainas by the Sahi Kings of Saurashtra about the end of the second century of the Christian era. They may, however, be much older."

– The Report. P. 141-143

अनुवाद ---- स्वस्ति श्री धृति ---- श्री नेमिनाथ की नमस्कार ---- वर्ष ---- फाल्गुन सुदी ५ वृहस्पतिवार, श्री ---- श्री महीपाल महाराज और ---- के तिलक फाऊ नामु की वयरसिंह की भार्या, उसका पुत्र माननीय ------ उसके पुत्र माननीय साईआ और मेला-मेला ------ उसकी पुत्रियाँ रूड़ी, गांगी इत्यादि। इन सबने एक नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा ------ द्रसूरि के पट्ट पर विराजमान थी मुनि ने की ------ कलणयत्रय ××××।+ .

दिगम्बरीय मूलसंघ में 'सिंह' नाम का मुनि सम्प्रदाय प्रसिद्ध रहा है। लगभग इसी समय एक मुनि रामसिंह प्रसिद्ध थे जिन्होंने पाहुड़ दोहा की रचना की थी।

दक्षिण भारत के कल्लरगुडु (शिमोगा) से प्राप्त सन् ११२० ई. के शिलालेख में भ. नेमि के निर्वाण प्राप्त करने का उल्लेख है। उस समय अहिच्छत्र में विष्णुगुप्त राजा राज्य करते थे। उन्होंने हर्षातिरेक में इन्द्रध्वज पूजा की थी जिससे इन्द्र प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें ऐरावत हाथी भेंट किया था।[1]

गिरनार के श्री नेमिनाथ मंदिर की चार दीवारी में डॉ बर्जेस को कुछ शिलालेख मिले थे, जिनमें उल्लेखनीय इस प्रकार हैः-

"ठ. संवत् १२१५ वर्षे चैत्रसुदि ८ रवौ अद्येह श्रीमदूर्ज्जयन्ततीर्थे अगत्यां समस्त देवकुलिका सक्रछाजा कुवालि संविरण सर्व ठ. ९० हालासण प्रतिपत्या सु जसहड़ ठ. सावदेवन परिपूर्ण कृता तथा ठ. रुरक्षसुत ठ. परिसालिवाहेण बागरु रिसिराया परितः कारित श्री चंच्वारिदिंवांकृत कंडक मंतिरं तदविधात्री श्री अंविकादेवतिया देवकुलिका च निष्पादिता !"

इसका भाव यह है कि सं. १२१५ में ठा. सावदेव और जसहड़ ने ठा. सालवाहण की स्मृति में श्री ऊर्जयन्त तीर्थ पर समस्त देवकुलिकायें परिपूर्ण की थी- उसी वर्ष ठा. रुरक्षके पुत्र परि ने वागर (बागड़ !) के ऋषिराय सलिवाहण के स्मार्क में श्री अम्बिकादेवी की बनवाई 'बागरु रिसिराया' का अर्थ यदि 'बागड़ऋषिराय' किया जाए तो सालिवाहण जी बागड़ दि. जैन संघ से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

कर्नल टाड सा. को गिरनार पर कुछ ऐसे शिलालेख भी मिले थे, जिनमें गिरनार पर प्राचीन मन्दिरों के स्थान पर नए मन्दिर बनाए जाने का उल्लेख है।[3] एक शिलालेख में लिखा था कि सं. १२१५ (११५८ ई.) में श्री पं. देवसेन की आज्ञानुसार संघ ने चैत्र सुदी ८ रविवार के दिन देव के प्राचीन मन्दिरों के स्थान पर नए मन्दिर बनवाए। एक दूसरे शिलालेख को टांड सा. ने इस प्रकार पढ़ा था -

---

1 जैन शिलालेख संग्रह, द्वितीय भाग पृ. १६४

2 जैन शिलालेख संग्रह पृ. ४२२

3 The Report, P. 169

'सं. १३३९ (१२८३ ई.) ज्येष्ठ सुदी १० बृहस्पतिवार को पुराने मन्दिर के भग्नावशेषों को रैवताचल पर्वत पर से हटाकर नए मन्दिर बनाए गए।'

यह उस समय का लेख है जबकि गिरनार सोलङ्कियों के अधिकार में आ गया था और सज्जन आदि जैसे, जैन राज्याधिकारी वहाँ के शासक नियुक्त हुए थे। नए मन्दिरों को बनवाने की धुन में पुरानों का उद्धार करना आवश्यक समझा गया।

१९ जनवरी सन् १८७५ को डॉ. जेम्स बर्जेस सा. ने गिरनार की यात्रा की। उन्होंने लिखा है जूनागढ़ से १७५० फीट की ऊँचाई पर जहाँ से सीढ़ियाँ आरम्भ होती हैं वहाँ से कुछ ऊपर निम्नलिखित शिलालेख हैं :-

स्वस्ति सम्वत १६८१ वर्षे कार्तिकवदि ६ सोम श्री गिरनार तीर्थनी पूर्वनी पातनो चढ़वाया श्रीढीवती संघे घीएणा निमित्ते श्री माला ज्ञातीस्यामासिंघजी मेघम्मीमे उद्यमे करावो।'

इसमें पूर्व पांति की सीढ़ियों की मरम्मत कराने का उल्लेख है।[1] इस शिलालेख से २५० फीट ऊपर निम्नलिखित अन्य शिलालेख हैं।

(१) सं. ११२ श्री श्रीमालज्ञातातीतयमहं श्री राणिरामुसूत दण्ड श्री श्रावकेन पद्यवा (का) रिता।[2]

(२) सं. ११२३ महं. मीराणीगसुत श्रावाकेन पद्या कारिता।[3]

(३) सं. १२२२ श्रीसीमालाज्ञातीयमहं श्री रार्णिगसुत दंड श्रीश्रावकेन पद्मा कारिता।

इन लेखों में श्रावकों द्वारा सीढ़ियाँ बनवाने का उल्लेख है।

जैन मन्दिरों के मुख्य द्वार पर गिरनार गढ़ के शासक रा मंडलीक का विषद काव्यमयी शिलालेख अङ्कित है। जिसका प्रारम्भ इस प्रकार होता है :-

(४) 'पतेः श्रेष्ठ सद्धीमानसो संबोधनापतिम्भया भूप परितागो दुरागामयः इत्यादि।'

इसमें गिरनार का उल्लेख ऊर्जयन्त और रैवत दोनों नामों से हुआ है और उसकी शोभा का बखान भी खूब किया गया है। एक श्लोक देखिए-

---

1 Ibid. P. 169

2 Burgess Memorandum on the Antiquities at Dabhoi, Ahmedabad, Then, Junagadh, Girnar and Dhank Bombay 1874. P. 18.

3 The Report, P. 170

'नानातीर्थोपवनतटिनीकाननै रम्यहर्म्यैः
पौरर्भूमोरतिपृथु कृतात्यतपोख्यैरसंख्यै।
शश्वन भूवाभृदपि विपुलो राष्ट्रवर्यः सुराष्ट्रः
राष्ट्रो दध्रेऽनुपमगिरिराट रैवतालंकृतिं यः ॥'

भावार्थ- सुराष्ट्र के श्रेष्ठ राष्ट्र में स्थित अनुपम रैवत यद्यपि खूब ही समलंकृत है परन्तु उसकी शोभा नाना तीर्थों, क्रीड़ाकुञ्जों, झरनों, वनों, राजाओं के सुन्दर महलों में और भी बढ़ गई है।[1]

इस शिलालेख में रा मंडलीक द्वारा भ. नेमिनाथ का स्वर्णखचित मन्दिर बनाए जाने का उल्लेख किया।

इसी के पास ही मन्त्री प्रवर वस्तुपाल-तेजपाल का शिलालेख है, जिसमें भी गिरनार का सुन्दर वर्णन किया है वहीं पर एक अन्य शिलालेख इस प्रकार है :-

''ॐ नमः सर्वज्ञाय संवत १४८५ वर्षे कार्तिक सुदि पञ्चमि ५ बुधे श्री गिरनार माहतिष्ठा सा षेतसिंह निर्माण श्री मन्त्रिदलीपवंशे श्रीमत सुमायड़गोत्रे मतिवाणठा अदाप्रजा ठा. लासु ततराल ठा.- ठा. षेतसिंह भार्या बाई चन्दणगट्टी श्रीनेमिनाथ चरणप्रमणतिशुभं।''

श्री नेमिनाथ मन्दिर के सहन में एक पाटिया पर निम्नलिखित चरण चिन्हों सहित अंकित है, जिसे डॉ. बर्जेस ने अपने संग्रह में नं. २८ पर यूँ लिखा है[2]-

''हर्ष कीर्ति नी पादुका''

''संवत् १६९२ श्री मूलसंघे श्री हर्षकीर्ति श्री पदाकीर्ति भुवनकीर्ति ब्र. अमर सिभाणमनजी पं. वीर जैयन्त माइवासदयाला तेषां ९ नेमियात्रा सफलास्तु॥''

इससे स्पष्ट है कि दिगम्बरीय मूलसंघ के भ. हर्षकीर्ति ने संघ सहित नौ बार गिरनार की यात्रा की थी। उनके शिष्यों ने इस पावन स्मृति में उनके चरणचिन्ह स्थापित किए थे।

इनके अतिरिक्त गिरनार के मन्दिरों में विराजमान जिनमूर्तियों पर भी लेख है, जिनमें जैनों की मान्यता का बोध होता है।

निस्सन्देह गिरनार जैनों का एक महान तीर्थ रहा है, उसकी पवित्र मान्यता की प्रसिद्धि दूर-दूर देशों के श्रावकों में हो गई थी। दक्षिण भारत के दिगम्बर जैनों में गिरनार इतना पवित्र माना जाता था कि वे अपने दानपत्रों के अन्त में दान की स्थिरता के लिए ऊर्जयन्त की सौगन्ध लिखाते थे। उनको यह भी पता था कि गिरनार पर ऋषियों का संघ रहता है। सुदूर दक्षिण से वे गिरनार की यात्रा करने आते थे। तभी तो गिरनार की वास्तविक दशा का उल्लेख करते

1 Burgess Memorandum - PP. 31-32

2 Memorandum .... P. 32

है। उडुपि तालुका के कापू नामक स्थान से प्राप्त शिलालेख में लिखा है कि सन् १५५६ में मंजु हेगड़े नामक दि. जैन सरदार ने जब श्री देवचन्द्र को भूमिदान दिया तो उसके अन्त में लिखा था कि जो कोई इस दान को मेटेगा उसे बेलगोला के गोम्मटनाथ कोपण के चन्द्रनाथ और ऊर्जयन्त गिरि (गिरनार) के नेमीश्वर की मूर्तियों को खण्डित करने का पाप लगेगा। इससे स्पष्ट है कापू के दिगम्बर जैनी गिरनार तीर्थ से खूब परिचित थे। यही बात गेरसोप्पो नगर के दिगम्बर जैनों के लिए भी कही जा सकती है। सन् १५१७ में वहाँ के शासक देव भूप ने शंखजिनवसति के लिए भूमिदान दिया था। अपने दान पत्र के अंत में उन्होंने लिखा था कि जो इस दान को मेटेंगे उसे ऊर्जयन्त पर्वत पर ऋषिहत्या का पाप लगेगा।' इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि गेरसोप्पे के जैनों को गिरनार पर मुनिजनों के आवास का विश्वास था। निःसन्देह गिरनार निर्ग्रंथ (दिगम्बर) मुनिजनों की तपोभूमि प्राचीनकाल से रही है। केलदिय सदाशिवनायक के ताम्रशासन में भी गिरनार का उल्लेख इस प्रकार से हुआ है:-

''इस धर्म के प्रतिकूल चलने वाले जैनी बेल्गोलस्थ गुम्मटनाथ, कोपणस्थ चन्द्रनाथ ऊर्जयन्तगिरिस्थ नेमिनाथ आदि जिन प्रतिमाओं को फोड़ने के पापभागी होंगे।''

ऐसे ही और भी शिलालेखीय उल्लेख उपस्थित किए जा सकते हैं, परन्तु गिरिराज ऊर्जयन्त गिरनार की महानता और पवित्रता को स्पष्ट करने के लिए यही पर्याप्त है। पाषाण पट्टों पर लिखी हुई इस काव्यमयी वाणी के द्वारा ऊर्जयन्त का जो गुणगान और इतिहास का वर्णन किया गया है, वह अमर है। उसे पढ़कर मानव का हृदय श्रद्धा से नमता और हृदय दया से भीग जाता है ! वह मानवता का अर्थ समझतां और जीवन पथ में आगे बढ़ता है ! जय हो ऊर्जयन्त की ! जय हो रैवत की !

भावार्थ-द्वारका नगरी के बाहर-उत्तर पूर्वीय दिशा में रैवय (रैवत) नामक पर्वत था। इस रैवत पर नंदन वन नामक उद्यान था। वही सुरिप्पिय का यक्ष मंदिर था।

इस ग्रन्थ में भ. अरिष्टनेमि, मुनि गजसुकुमाल आदि के प्रसंग में सहस्राआम्रवन और महाकाल स्मशान का भी उल्लेख है। 'विविधतीर्थकल्प' में गिरनार का उल्लेख रैवतकगिरि और ऊर्जयन्त नाम से हुआ है। उसमें लिखा है कि छात्रशिला के पास भ. नेमि ने दीक्षा ली थी सहस्राम्रवन में उनको केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई थी और लक्खाराम में उन्होंने देसना दी थी। अवलोकन शिखर से मुक्त हुए थे। इन्द्र ने गिरनार पर सोने चाँदी के जिनमूर्ति व मन्दिर बनवाये थे। अम्बादेवी का मन्दिर बना था। मेघनाद जिनेन्द्र नेमि का भक्त था। नारायण कृष्ण ने निर्माण स्थान पर सिद्धविनायक निर्माण कराया था। छात्रशिला,घटशिला और कौडिशिला नामक तीन शिलायें प्रसिद्ध थीं। 'श्री उज्जयंतस्तव' में गिरनार को गिरीश्वर कहा है। उज्जयन्त पर ही ज्ञानशिला और निर्वाणशिला थीं।[1]

कश्मीर देश के अजित और रतन नाम के दो भाई संघ सहित गिरनार की वन्दना को आए थे, यह भी कथन है। उन्होंने भ. नेमि की लेपमय प्राचीन मूर्ति का अभिषेक किया तो वह गल गई। उन्हें बड़ा परिताप हुआ इस पर २१ दिन का उपवास किया तो अम्बिकादेवी ने दर्शन दे प्रोत्साहित किया। रतन ने भ. नेमि की रत्नमयी प्रतिमा विराजमान की। साहू भावड़ भी यहाँ आए और मन्दिर बनवाया जयसिंह और कुमारपाल राजाओं के समय में श्वेताम्बर जैनों के कई मन्दिर पहली टोंक के पास में बने हुए मिलते हैं। श्वेताम्बर साहित्य में इनका विशद् वर्णन है।

अणहिल्लवाडपट्टन से वीर धवल नरेश के राज्यमंत्री पोरवाड़ कुलमन्डन वस्तुपाल तेजपाल जब गिरनार संघ लेकर आए तो दामोदर और स्वर्णरेखा नदियों को पार करके ठहरे और उत्सव मनाया। उन्होंने भी कई मन्दिर बनवाए थे। उनके पुण्य कार्यों को बताने वाले काव्य ग्रन्थ मिलते हैं।

उदयनमंत्री ने चौलुक्य नरेश के साथ गिरनार की यात्रा की। (प्रबन्धकोष, पृ. ४८)

रैवत शिखिर के सातक्षेत्रपति थे, जिनके नाम कालमेघ, मेघनाद, गिरिविदारण, कपाट, सिंहनाद, खाटिक और रैवत थे। (प्रबन्धकोष पृ. ९६)

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि रैवत अथवा ऊर्जयन्त पर्वत भ. नेमि के कारण जैनों का महान पूज्य तीर्थ रहा है। गिरनार पर्वत का प्रारम्भिक भाग सम्भवतः रैवत नाम से प्रसिद्ध था, जहाँ यादव गण आकर आमोद-प्रमोद भी करते थे एवं उसका ऊपरी भाग ऊर्जयन्त कहलाता रहा क्योंकि वहीं से प्रद्युम्न, शम्बु और नेमि भगवान मुक्त हुए थे। सामान्यतः सारा पर्वत इन नामों से परिचित रहा है।

---

१ विविधतीर्थकल्प (सिंधी जैन ग्रन्थमाला) पृ. ६-१९
'उज्जितलसेसिहरे दिक्खा नाणं निसीहिया जस्व।
तं धम्मचक्वट्टि अरिष्टनेमि - नमसामि। — प्रबन्धकोष पृ. ४

(५)

दिगम्बर जैनों का प्राचीन केन्द्र और तीर्थ

दंसण णाण चरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति।

-कुन्दकुन्दाचार्य

***

णाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो जिणोहिं वरद सहिं॥

-उत्तराध्ययन सूत्र

जिनेन्द्र भगवान ने सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म का निरूपण जीवमात्र के हित के लिए किया और उसे 'मार्ग' अथवा मोक्षमार्ग के नाम से उल्लिखित किया। जिस प्रकार मार्ग [illegible] का प्रत्येक प्राणी उपयोग करता और इच्छित स्थान पर पहुँचता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर कोई भी महाभाग निर्वाण धाम को प्राप्त होता है। वह एक [illegible] नियम है किन्तु पंथ के मोही पथिक जिस प्रकार मार्ग के किनारे पर जहाँ-तहाँ मनमाने [illegible] लगाते हैं प्याऊ रखते और विश्रामगृह जुड़ाते तथा उन पर अधिकार जमाते हैं, उसी प्रकार मोक्षमार्ग में पड़कर भी कुछ पन्थ मोही लोग अपने संघ गच्छादि बनाकर उस पर अधिकार स्थापित करने लगते हैं। इस प्रकार के वे सत्य मार्ग से भटक जाते हैं। मार्ग एक है और उस पर गमन करने की नीति भी एक है- यह मुमुक्ष नहीं भूलते !

किन्तु लोक में मिथ्यात्व की कालिमा मानव को सत्य के दर्शन नहीं होने देती और [illegible] हुआ पन्थी बाह्य भूल भुलैयों में भटका रहता है। यही कारण है कि लोक में नाना मत और पन्थ मिल रहे हैं। जैन संघ में भी सम्प्रदायों-गच्छों और गणों की कमी नहीं है। किन्तु स्मरण रखने की बात है कि बाह्य भेष और मत उपादेय नहीं है- रत्नत्रय मोक्ष मार्ग है।

भ. महावीर के समय में जैन इस सत्य को पहचानते थे- वे सम्यक् दृष्टा थे, प्रकृति के रूप में वे रहते थे। भ. महावीर स्वयं नग्न-प्रकृति रूप यथाजात रहे और उनके अनुयायी श्रवण मुनि भी। 'आचारांगसूत्र' में भी यथाजात अचेलक भेष दिगम्बरत्व को परम धर्म कहा है। व्यवहार में जिनमूर्तियाँ भी नग्न बनी और जैन मुनि भी नंगे बिचरे उनके पास परिग्रह की कोई [illegible] नहीं थी, इसलिए वे निर्ग्रंथ कहलाते थे। यह प्राचीन परम्परा अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु तक अक्षुण्ण रही। आज भी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही भद्रबाहु तक ही गुरुओं के उपासक हैं, किन्तु भद्रबाहुजी के बाद से स्थिति बदल गई।

बात यह हुई कि उस समय उत्तर भारत में बारह वर्ष का एक भयंकर दुष्काल पड़ा। श्रुतकेवली भद्रबाहु ने पहले ही अकाल की विषमता को जान लिया था। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त को उन्होंने सारी स्थिति बताई जिसे सुनकर चन्द्रगुप्त संसार से भयभीत होकर जैन मुनि हो गए। श्रुतकेवली भद्रबाहु अपने बारह हजार शिष्यों सहित दक्षिण भारत की ओर चले गए। इस यात्रा में वे गिरनार-शत्रुञ्जय आदि तीर्थों की वन्दना करते हुए दक्षिण को गए थे और श्रवण बेलगोल में ठहरे थे। जिस पर्वत पर सम्राट चन्द्रगुप्त ने मुनिव्रत तप तपा था, वह उनके कारण कटवप्र के बजाय चन्द्रगिरि नाम से प्रसिद्ध हो गया। प्राचीन शिलालेखों और शास्त्रीय साक्षी से यह घटना आज सर्वमान्य है।

जब उत्तर भारत में सुकाल हुआ तो बहुत से जैन मुनि स्वदेश को लौट आए, परन्तु उत्तर भारत में रहे मुनियों के नए रंग-ढंग को देखकर वे विस्मित हुए, उन मुनियों ने हाथ में डंडे के लिए थे और वे घरों से आहार लाकर एक स्थान पर बैठकर खाने लगे थे। नग्नता को छिपाने के लिए उन्होंने एक खण्डवस्त्र ग्रहण किया था, जिसे वे कलाई पर लटका कर निकलते थे। इसी कारण वे 'अर्द्धफलक' कहलाते थे। प्राचीन मुनियों के समझाने पर भी वे न माने और अपने नए भेष में चलते रहे। इस प्रकार प्राचीन जैन संघ में भेद का बीज उठ खड़ा हुआ।[1]

इस घटना का उल्लेख आचार्य हरिषेण कृत 'वृहत कथाकोष'[2]- श्री रत्ननन्दि कृत 'भद्रबाहु चरित्र' नामक ग्रन्थों में मिलता है।[3] उधर प्राचीन शिलालेखों से भी इसकी पुष्टि होती है। कंकाली टीला मथुरा से आज से लगभग दो हजार वर्षों पुरानी मूर्तियाँ मिली हैं और वे सब नग्न हैं। उनमें से कुछ पर श्वेताम्बरीय संघ और गच्छ के आचार्यों की नामावली अङ्कित है। इससे स्पष्ट है कि उस समय श्वेताम्बरीय पूर्वज नग्न मूर्तियाँ बनाते और उनकी पूजा करते थे।

कंकाली टीला से कुछ ऐसे प्राचीन आयागपट्ट भी मिले हैं जिनमें जैन साधु यद्यपि नग्न बनाए गए हैं, परन्तु वे अपनी नग्नता को कपड़े के टुकड़े से छिपाते हुए अंकित किए गए हैं। आचार्य हरिषेण ने भी यही लिखा था कि दुष्काल के पश्चात जो साधु उत्तर भारत में रह गए थे, वे कपड़े के टुकड़े (खण्डवस्त्र) से अपनी नग्नता को छुपाते थे और दक्षिण हाथ में कमण्डलु अथवा भिक्षापात्र रखते थे।[4]

---

1 जैन शिलालेख संग्रह (मा.ग्र.) भाग १ भूमिका

2 वृहदकथाकोष पृ. ३१७-३१९

3 भद्रबाहुचरित्र (सूरत) पृ. ७०-८५

4 यावन्न शेभनः कालो जायते साधवः स्फुटम।
ताबच्च वामहस्तेन पुरः कृत्वाऽधंफालकम ॥८५॥
भिक्षापात्रं समादायं, दक्षिणेन करेण च।
सहीत्वा नक्तमाहारं कुरुध्वं भोजन दिने ॥५९॥ — कथा न. १३३

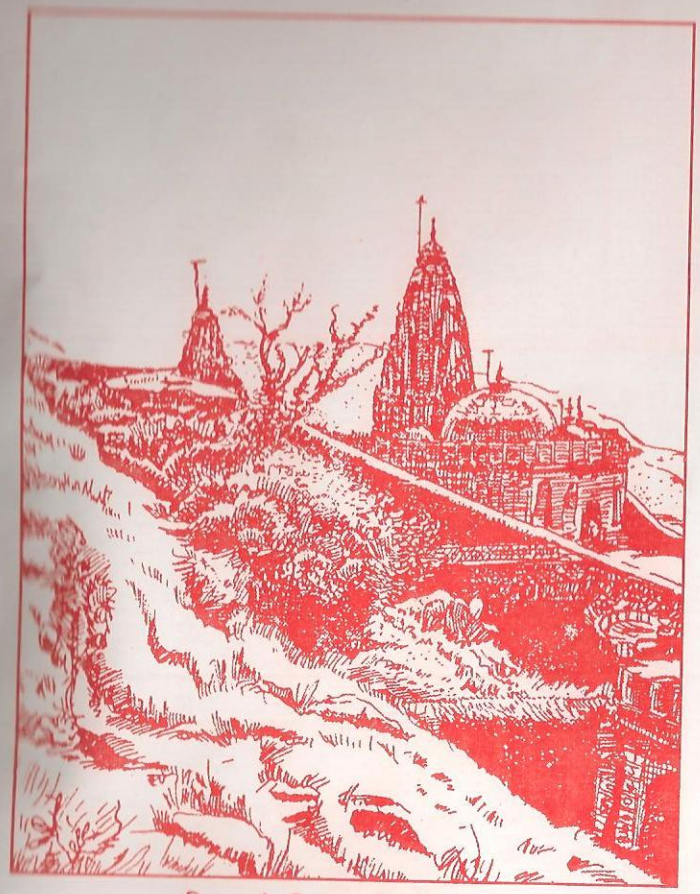

गिरनारजी की प्रथम टोंक के क्षेत्र में
तीन दिगम्बर जैन मन्दिर

दाएँ –

श्री गिरनार की प्रथम टोंक पर श्री दि. जैन मन्दिरजी के नीचे गुफा में राजुल की मूर्ति एवं भ. नेमिनाथ स्वामी के चरणचिन्ह दि. जैन कोठी के वकील साहब हाथ जोड़े बैठे हैं।

बाएँ –

श्री गिरनारजी की पहली टोंक के दिगम्बर जैन मन्दिर में भगवान बाहुबलि की प्राचीन दिगम्बर जैन प्रतिमा।

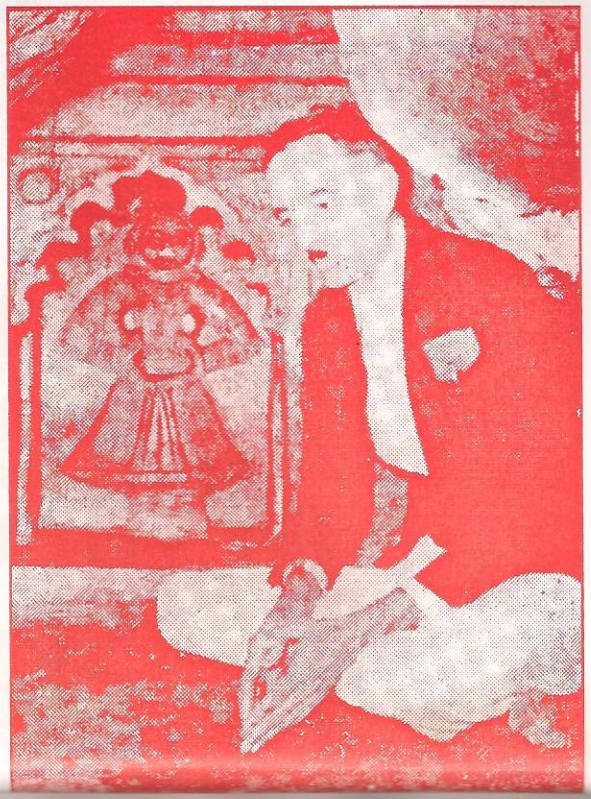

गिरनार की पहली टोंक पर स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर में जिन मूर्तियाँ
(इस मन्दिर को प्रतापगढ़ निवासी श्री बन्डीलालजी ने बनवाया था।)

गिरनार की पहली टोंक वाले दिगम्बर जैन मन्दिर में विराजमान
तीन अन्य दिगम्बर जैन मूर्तियाँ

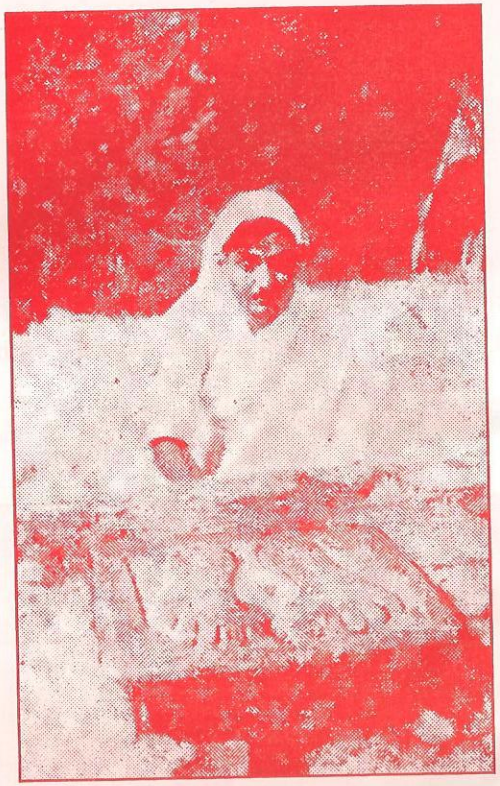

मुनि अनिरुद्ध कुमार के चरण-चिन्ह
(अम्बिका देवी के मन्दिर के पीछे गिरनार की दूसरी टोंक पर)

दाएँ –
श्री गिरनार की चौथी टोंक पर
प्रद्युम्नकुमार मुनि की विशाल
पाषाण खण्ड में दिगम्बर जैन
प्रतिमाजी।

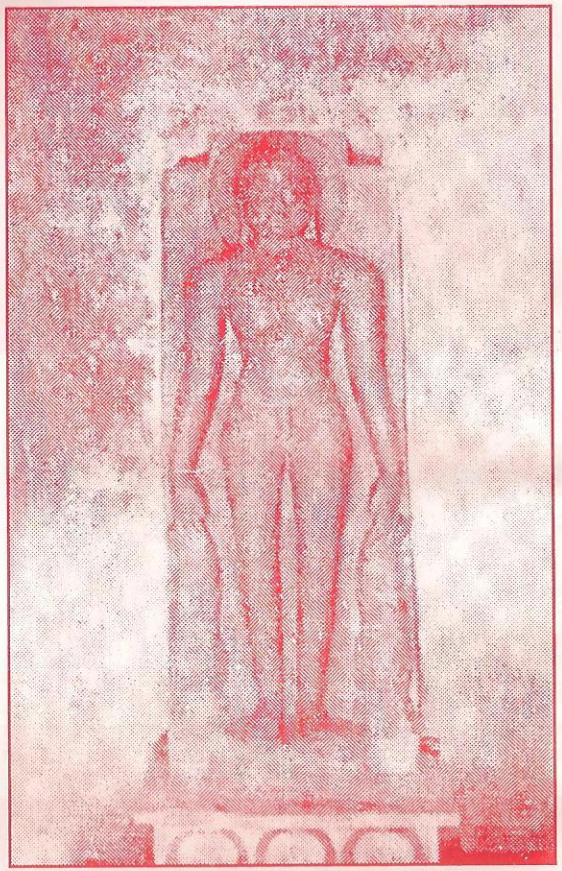

भगवान बाहुबली की प्राचीन प्रतिमा

मथुरा के पुरातत्व में वोद्व (Vodva) स्तूप वाले शिलापट्ट में एक नग्न साधु अङ्कित है, जिसके हाथ की कलाई पर कपड़े का टुकड़ा पड़ा है। इसके संबंध में डॉ. बुल्हर का हवाला देते हुए श्री चिमनलाल शाह (श्वे. विद्वान) ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है उक्त साधु नग्न है और अपनी नग्नता को खण्ड वस्त्र से छिपा रहे हैं।[1]

इसी प्रकार वहाँ की प्लेट नं. १२ में कण्हश्रमण को नग्न अंकित करके उनकी कलाई पर खण्डवस्त्र लटकता हुआ उकेरा गया है। श्वेताम्बर परम्परा में कण्हश्रमण एक प्रमुख साधु हुए हैं। कण्हश्रमण का दूसरा हाथ पीछी लिए कन्धे पर रखा हुआ आगपट्ट में दर्शाया गया है। वह किसी राजमहिषी को उपदेश दे रहे हैं। उनके पीछे एक नाग कन्या खड़ी हुई है। (देखो चित्र नं. २)

श्री रत्ननंदीजी ने भी 'भद्रबाहु चरित्र' में स्पष्ट लिखा है कि जब एक सेठानी निर्ग्रन्थ श्रमणों के नंगे रूप से डरी तो सेठानी की प्रार्थना पर उन सुधाओं ने एक 'आधा वस्त्र स्वीकार कर लिया, जिससे वह अपनी नग्नता छिपाने लगे। (धृत्वा सुश्ल्लकं शीर्षे परिधानार्द्धफलफालकम)

इसी प्रकार नैगमेश-पट्ट में भी जो मथुरा के कंकाली टीला से ही मिला था, इस साधु का चित्रण अर्द्धफालक वेष में किया गया है। (देखो चित्र नं. ३) डॉ. बुल्हर ने उनके विषय में यही लिखा है-

"At his (nemesa's) Lift knee stands a small naked male, characterized by the cloth in his left hand an ascetic with upliftd tight hand" (Ep Ind II,316)

पुरातत्व की इस प्राचीन साक्षी से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से यद्यपि जैन साधु दिगम्बर (नग्न) वेष में रहते थे, परन्तु मौर्यकालीन दुष्काल के पश्चात ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों तक उनमें से कुछ अपनी नग्नता को छिपाने के लिए कपड़े का टुकड़ा काम में लाने लगे थे। इस प्रकार के साधुओं का संघ 'अर्द्धफालक' नाम से प्रसिद्ध हुआ था।

धीरे-धीरे आगे चलकर इन साधुओं ने क्षुल्लक निर्ग्रंथ के वस्त्रधारी भेष को अपना लिया। श्वे. आचारांग सूत्र में उस निर्ग्रंथ साधु के जो निम्नकोटि का माना गया है, वस्त्र

1 The Vodva Stupa .... the male figure on the right of Dharmachakra is considered by Dr. Bulher to be that of a naked ascetic, who, as usual, has a piece of cloth hanging over his right arm."
– Jainism in North India.

परिधान का विधान किया गया है। दिगम्बरीय शास्त्रों में लिखा है कि वि. सं. १३६ में श्वेताम्बर सम्प्रदाय बिल्कुल स्पष्ट हो गया था।

उधर श्वेताम्बर ग्रन्थ भी लगभग इसी समय दिगम्बर सम्प्रदाय को उत्पन्न हुआ बताते हैं। सारांशतः विक्रमीय द्वितीय शती के पूर्वपाद में अखण्ड जैनसंघ दो बड़े-बड़े सम्प्रदायों में बँट गया। प्राचीन शिलालेखों से स्पष्टतः विदित होता है कि दिगम्बर सम्प्रदाय पहले 'निर्ग्रंथ श्रमण संघ' के नाम से प्रसिद्ध था- उपरांत काल में यह 'दिग्वास' और 'दिगम्बर' कहलाया। श्वेताम्बर पहले 'निर्ग्रंथ श्वेतपट श्रवण संघ' कहलाया और फिर श्वेताम्बर नाम से प्रसिद्ध हो गया।[1] दिगम्बर प्राचीन नग्न मूर्तियों को ही पूजते रहे, परन्तु श्वेताम्बर जैनों ने साधुवेष की तरह मूर्तियों को भी सवस्त्र बनाया था।

जब ईस्वी प्रारम्भिक शताब्दियों में इस प्रकार क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ तो उसके प्रभाव से तीर्थ भी अछूते न रहे। नए विचारों के लोगों ने तीर्थों पर भी अपने सम्प्रदाय की छाप लगाने के लिए प्राचीन नग्न मूर्तियों के स्थान पर सवस्त्र मूर्तियाँ स्थापित करना चाही तो संघर्ष उठ खड़ा हुआ। गिरनार क्षेत्र पर भी एक ऐसा प्रसंग प्रारम्भ में ही उपस्थित हुआ था, किन्तु उस समय श्री कुन्दकुन्दाचार्य महान आचार्य थे, जिनका प्रभाव नए और पुराने सभी विचार वाले जैनों पर एक समान था। उन्होंने सभी को समझाया और आँखों से दिखाया कि देखो भाई ! मूर्तियों की प्राचीन प्रकृति नग्न है- उसे अक्षुण्ण रहने देना चाहिए। उनकी यह बात सबको मान्य हुई और लगभग दसवीं बारहवीं शताब्दि तक कोई भी सवस्त्र मूर्ति बनाई गई हो, ऐसा विदित नहीं होता। दिगम्बर शास्त्र कहते हैं कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने गिरनार पर्वत पर स्थित सरस्वती देवी की मूर्ति से यह घोषणा कराई थी कि दिगम्बर वेष (नग्न रूप) आर्ष और प्राचीन है। इस घटना से यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल से ही गिरनार दिगम्बर जैन मुनियों का केन्द्र रहा और यहाँ से ही उनके सरस्वती गच्छ की उत्पत्ति हुई।[2]

किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द के बहुत पहले से भी ऊर्जयन्त गिरनार दिगम्बर जैन मुनियों

---

1 कदम्ब वंश के ताम्रपट में मथुरा के मूर्ति लेखादि में ऐसा ही उल्लेख है, जिसके लि
हमारा अंग्रेजी लेख देखिये जो 'जनरल ऑफ दी यू.पी. हिस्टारीकल सोसाइटी' में छप
है।

2 नंदिसंघ की गुर्बावली में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है -
''पद्यदन्दनी गुरूजाती बालात्कारगणाग्रणी।
पाषाण घटितायेन वादिता श्री सरस्वती।।३६।।
उज्जयन्त गिरौ तेन गच्छः सारस्वती भवेत्।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्यनन्दिने।।३७।।
इस प्रकार दिगम्बर संघ में सरस्वती गच्छ की उत्पत्ति ऊर्जयन्त से हुई।

का केन्द्रीय तीर्थ रहा है। हम देख चुके हैं कि श्रुत केवली गोवर्द्धन स्वामी और भद्रबाहु स्वामी भी यहाँ आए थे। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त उनके शिष्य थे। उस समय गिरनार मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत एक बड़ा प्रदेश था, जिसकी राजधानी जूनागढ़ (गिरनार) थी। चन्द्रगुप्त के बहनोई पुष्यगुप्त इस प्रदेश के शासक थे, जिन्होंने सुदर्शन झील बनाई थी। अन्त में जब चन्द्रगुप्त श्री भद्रबाहु स्वामी के निकट दिगम्बर मुनि हो गए थे, तब वह गिरनार की वन्दना करने आए थे। इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। इससे स्पष्ट है कि मौर्यकाल में भी गिरनार दिगम्बर जैनों का एक मान्य तीर्थ था। उपरान्त अंग ज्ञान के ज्ञाता श्रीधर सेनाचार्य यहाँ रहे थे। यहाँ की चन्द्रगुफा में रहकर उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्यों को अंगज्ञान का बोध कराकर उसे लिपिबद्ध कराया था।

इस प्रकार श्रुतोद्धार के कारण दिगम्बर जैनों के लिए गिरनार और भी अधिक पूज्य और मान्य हो गया। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, स्वामी समन्तभद्र, वीरसेनाचार्य प्रभृति बड़े-बड़े दिगम्बर जैनाचार्य गिरनार पर आकर रहे थे। इस प्रकार प्रारम्भ से ही दिगम्बर जैन संघ का केन्द्र गिरनार रहा है। सम्राट ऐल खारवेल के समय से ही मथुरा उज्जैन गिरिनयर (गिरनार) और कांचीपुरम जैन केन्द्र थे। श्वेताम्बर जैन संघ गुजरात के बल्लभीपुर में प्रबल रहा था और उसके निकट शत्रुञ्जय को मान्यता विशेष रही थी। दिगम्बर जैनों के उपलब्ध आगमसाहित्य के लिपिबद्ध करने के तीन चार सौ वर्षों बाद श्वेताम्बर जैनों ने वल्लभीपुर में ही अपने आगम ग्रंथों की व्यवस्था और उद्धार किया था। इस प्रकार दिगम्बर जैनों के निकट गिरनार एक पूज्य तीर्थ मात्र रहा हो- इतना ही नहीं बल्कि वह उन सबका केन्द्र स्थान भी रहा, जिसका जैनाचार्य उसका प्रबन्ध कराने में अग्रसर रहे किन्तु मध्यकाल में जबकि दिगम्बर श्वेताम्बर भेद बिलकुल स्पष्ट होकर सुदृढ़ बन गया था, तब दिगम्बरों को यह अधिकार संघर्ष का कारण बन गया। स्वयं श्वेताम्बरीय ग्रन्थों में इस संघर्ष का आभास मिलता है।

भ. नेमि ने गिरनार पर वस्त्राभूषणों का त्याग करके दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी। अभी पाठक पढ़ेंगे कि हिन्दू पुराण नेमि प्रभु की नग्नता का समर्थन करते हैं। इसी अनुरूप गिरनार पर भी प्राचीकाल में भ. नेमि की मूर्तियाँ दिगम्बर भेष में ही थीं- यह बात श्वेताम्बरीय ग्रंथों से भी स्पष्ट है।

श्वेताम्बरीय साहित्य में पहले श्री रत्न मन्दिर गणिकृत 'उपदेश तरंगिणी' नामक ग्रंथ को लीजिए। उसमें लिखा है कि 'सौराष्ट्र देश के गोमण्डल (गोंडल) नामक गाँव के निवासी धाराक नाम के संघपति थे। वे शत्रुञ्जय की यात्रा करके जब गिरनार की यात्रा को गए, जो कि [illegible] वर्षों से दिगम्बरों के अधिकार में था, तब वहाँ उन्हें खंगार नामक किलेदार से लड़ना पड़ा और उसमें उनके सातों पुत्र और सारे योद्धा मारे गए। उसी समय जब उन्होंने सुना कि

गोपगिर (ग्वालियर) के राजा आम हैं और उन्हें बप्पभट्टिनामक श्वेताम्बराचार्य ने प्रतिबोधित कर रक्खा है, तब वे ग्वालियर आए और अपनी बीती बातें बताईं। इस पर आम राजा आवेश में प्रतिज्ञा कर बैठे कि गिरनार के नेमिनाथ की वन्दना किए बिना मैं भोजन ग्रहण नहीं करूँगा। वह तत्काल संघ सहित गिरनार को चल दिए और खम्भात पहुँचे, वहाँ उनका शरीर खिन्न और क्षीण देखकर वप्पगुरु ने एक प्रतिमा मंगवाकर उनको दर्शन कराए। फिर आप गिरनार पहुँचे या नहीं यह स्पष्ट नहीं है। हाँ इसके बाद उक्त ग्रंथ में दिगम्बरों से एक बाद कराने का उल्लेख है, जिसमें अम्बिका ने श्वेताम्बरों को विजयी घोषित किया। इस तरह तीर्थ को लेकर दिगम्बर श्वेताम्बर प्रतिमाओं में नग्नावस्था और अञ्चलिका का भेद कर दिया।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि राखगांर के समय में भी गिरनार पर दिगम्बर जैनों का आधिक्य था- अर्थात पर्वत के प्रबन्धक वे थे, गिरनार की मूर्तियाँ दिगम्बर भेष में थीं और इस घटना के बाद श्वेताम्बरों ने अपनी प्रतिमाओं को वस्त्रलाँछन से युक्त अञ्चलिकामय बनाना प्रारम्भ कर दिया, दिगम्बर प्रतिमाएं नग्न ही रहीं।

किन्तु श्वेताम्बरों के एक-दूसरे ग्रंथ 'सुकृतसागर' में एक और वर्णन मिलता है। उससे स्पष्ट है कि पेथड़शाह गिरनार की यात्रा को आए थे, उनके पहले वहाँ दिगम्बर संघ आया हुआ था। उस संघ के स्वामी दिल्ली निवासी अग्रवालवंशीय धनिक श्री पूर्णचन्द्रजी थे, जो शाह अलाउद्दीन द्वारा मान्य थे। (अलाउद्दीन शाखीनमान्य) पूर्णचन्द्र ने तीर्थ की वन्दना पहले करने का आग्रह किया, क्योंकि वह पहले आए थे और दूसरे वह तीर्थ को दिगम्बरों का बताते थे। उन्होंने कहा कि यदि वह श्वेताम्बर तीर्थ है तो भ. नेमि की मूर्ति पर अञ्चलिका कटिसूत्र प्रकट करो, परन्तु श्वेताम्बर ऐसा न कर सके; उन्होंने कहा कि भगवान आभरण सहन नहीं कर सकते। अन्त में तय हुआ कि जो अधिक धन देकर इन्द्रमाल ले, वही अधिकारी माना जाए। दिगम्बर बहुत बढ़कर बोली न बोल सके और श्वेताम्बरों को ही माला पहनने दी। दिगम्बरी यात्रा करके नीचे उतर आए।

उपर्युक्त घटनाओं से गिरनार पर दिगम्बर जैनों का प्राबल्य और अधिकार स्पष्ट है। उनमें ऐतिहासिक तथ्य हैं और उनसे यह प्रमाणित होता है कि धारक के बाद जब अलाउद्दीन के समय में पूर्णचन्द्रजी वन्दना करने आए तब भी वहाँ दिगम्बर जैन प्रबल थे। ग्वालियर के अम्मनृप का समय सन् ७२५ ई. है और अलाउद्दीन उनसे कई शतियों के पश्चात हुए। तीनों घटनाओं में गिरनार की भ. नेमि की मूर्ति को आभरणादि रहित दिगम्बर लिखा है। अर्थात उस समय तक मूलनायक की मूर्ति में कोई फेरफार नहीं किया था। श्वेताम्बर जैनों में अपनी मूर्तियाँ वस्त्रलांछनयुक्त उससे अलग बनाई- ऐसा प्रतीत होता है। दिगम्बर प्राचीन नग्न मूर्ति की यथाविधि पूजा करते रहे।

[illegible] 'प्रबन्धकोश' नामक एक अन्य ग्रंथ है, जो वि.सं. १४०५ का रचा हुआ है, [illegible] श्री राजशेखर सूरि ने रत्नश्रावक का प्रबन्ध लिखा है। उसमें कहा गया है कि [illegible] के निवासी रत्न नामक श्रीमन्त जैन ने गिरनार की प्रसिद्धि सुनी [illegible] आए। कुष्माण्डी देवी और सातों क्षेत्रपालों की वन्दना की। फिर [illegible] पर चढ़कर गया और वहाँ भ. नेमि की जो प्राचीन लेपमूर्ति थी, उसका [illegible] किया। प्रतिमा लेप की थी, इसलिए वह गल गई। रत्न को बड़ी चिन्ता हुई। [illegible] अम्बादेवी प्रकट हुई और रत्न श्रावक ७२ जिन प्रतिमाएं प्रतिष्ठित [illegible] में सफल हुए, जिसमें १८ सोने की, १८ रत्नों की, १८ चांदी की और १८ पाषाण की थीं। रत्न वन्दना करके लौटे तो रत्नों की प्रतिमा साथ में ले गए।[1]

इस प्रकार गिरनार पर विराजमान भ. नेमि की मूर्ति का अभाव हुआ था। ऐसा लगता है कि यही वह मूलनायक प्रतिमा थी, जो आभरणादि रहित नग्न वेष में थी। सभी जैनी उसकी पूजा वन्दना करते थे।

इन सब विवरणों का निष्कर्ष यही निकलता है कि प्राचीनकाल में जब दिगम्बर श्वेताम्बर भेद नहीं था, तब गिरनार पर्वत पर जो मूर्ति स्थापित की गई थी, वह आभरणादि रहित नग्न थी। ईस्वी प्रथम शताब्दि में जब दिगम्बर श्वेताम्बर भेद स्पष्ट हो गया तब श्वेताम्बरों ने आभरणादि युक्त जिनबिम्ब गिरनार पर बनाने का प्रयत्न किया और इसी पर संघर्ष उठा। चूँकि दिगम्बर जैनों का केन्द्र गिरनार प्राचीनकाल से रहा, वे वहाँ प्रबल अधिकारी थे- [illegible] ने इसका संरक्षण किया था- इसीलिए प्रारम्भ में श्वेताम्बर हतप्रभ रहे। किन्तु जब [illegible] ने गिरनार पर अधिकार कर लिया तब श्वेताम्बर जैनों का भी वहाँ प्राबल्य हो गया। दिगम्बर जैनों के साथ-साथ उन्होंने भी अपने मन्दिर बना लिए और दोनों ही अपने-अपने [illegible] मूर्तियों की पूजा और प्रबन्ध करते रहे।

1 प्रबन्धकोष (बम्बई) पृ. ९३-९७

(७)

वर्तमान रूप

छूती हैं स्वर्ग विमानों को कूटे गिरि की।
पाषाण शिलाओं से भू-नींव जमी उसकी।
पार्श्व बने हैं सुन्दर हरे-भरे बनराशि से;
अमित फलों से लदे वृक्ष हैं मनमोहक-से।[1]

आज के गिरनार के दिव्य दर्शन करके कवि हृदय उसके यशगान में स्वतः मग्न हो जाता है। गिरनार आज भी वैसा ही सुन्दर सौम्य और सुकृत का प्रेरक स्रोत है, जैसा कि आदिकाल में था। प्रकृति सौन्दर्य में ही वह सुहाता हो यह नहीं, उसका अपना आदर्श भी है जो मानव को 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के दर्शन कराता है। यही गिरनार का महत्व है।

सौराष्ट्र की दक्षिण पर्वत-श्रेणी में गिरनार अपनी निराली शान में इठलाता हुआ खड़ा है। उसका नाम तो बदला है- वह प्राचीन ऊर्जयन्त अथवा रैवत से गिरनार कहलाने लगा है, उसका रूप और रंग वही है, जो पहले था। उसकी शिखर नयनाभिराम जिन मन्दिरों से समलंकृत है।[2] काठियावाड़ में शत्रुञ्जय और गिरनार ही ऐसे प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जहाँ जैन श्रावक हजारों की संख्या में वन्दना करने आते हैं। उनका वर्तमान रूप आकर्षक है शिल्प और वास्तुकला का आश्चर्य कर प्रदर्शन यहाँ मिलता है।[3]

---

1 Its pinnacles touch heaven's lofty face.
Its rocks the earth's foundation form.
Ever in bloom are the bushes that wave on its sides,
With fruits its trees are ladden heavily. – Tarikh-i-Sorath.

2 Among the special interesting hill of the Southern series are th[e] Girnar anciently Ujjayanta and Raivata, famous for the Jaina temple[s] on its summit.

3 In Kathiawar there are two famous places of pilgrimages to which Shrawaks or laymen of jain faith resort in crowds. The first is the sacred hill of Shatrunjaya - the other is the Girnar mountain. J.W. Watson, The Gazetteer of Bombay Presidency Vol. VII P 147

[illegible]

[illegible] मानव ! सावधान हो, देख ये [illegible] हम पाँचों तुम्हारी रक्षा के लिए [illegible] और उन लुटेरों को तुम्हारे पास तक नहीं आने देना चाहते! तुम हमारी [illegible] में आकर आए हो तो लो यह ब्रह्मास्त्र अपने पास रखो। झिझको नहीं, यह तुम्हारे [illegible] ही हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से सज्जित होकर, हे मानव तुम [illegible] और लोक का कल्याण कर सकोगे।

इन शिखरों को जैनेतर लोग (१) अम्बा माता, (२) गोरखनाथ, (३) ओघड़ शिखर, (४) गुरु दत्तात्रेय और (५) कालका (जहां अघोरी रहते थे) कहते हैं। जैनों के निकट ये पांचों टोंक पूज्य और पवित्र है। इन पर उनके मन्दिर अथवा चरण बने हैं जिनकी वे पूजा और वन्दना करते हैं। चूड़ासमास वंश के राजाओं के किले और महलों के खण्डहर भी हैं।

शिखरों के अतिरिक्त गिरनार पर तीन कुण्ड भी प्रसिद्ध हैं, जो 'गौमुख', 'हनुमान धारा' और 'कमंडल कुण्ड' कहलाते हैं। 'भैरव जप' नामक पाषाण एक दर्शनीय वस्तु है। पहले इस पर से कूदकर पाखण्डी लोग स्वर्ग पाने के लोभ से अपने प्राण दिया करते थे, हो सकता है, यह वह स्थान हो कि जहां से अम्बिका का जीव अपने पूर्वभव में भागते हुए गिरकर स्वर्गवासी हुआ था। 'रैवतीकुण्ड' के ऊपर ही 'रवताचल' पर्वत है, जिसकी तलहटी में अशोक के धर्मलेख हैं।

जैनेतर बन्धुओं ने गिरनार की महत्ता को बढ़ाने के लिए सभी देवताओं को उन पर ला बैठाया है। विद्वानों का कहना है कि शिवजी के प्रसंग को लेकर उन्होंने मनमानी कथायें गढ़ ली हैं।[1] मूल में गिरनार भ. नेमि के निमित्त से पावन तीर्थ बना - यह सत्य जैनेतर पुराणों से भी सिद्ध है।

---

1 "The Brahmanas ever ready to consecrate with legend and pretended sanctity, what may conduce to their own profit, have not forgotten Girnar for about thirty chapters of the Prabhaskhand of the Skandhapurana is devoted to the account of the sanctity of Girnar .... This forms the Girnar Mahatmya, consisting chiefly of stories fabricated or copied from other paurane legendse by the Girnar Brahmmanas.

– James Burgess

इसीलिए जैनों के निकट गिरनार प्राचीनकाल से पूज्य तीर्थ रहा है। तीर्थङ्कर नेमि की अहिंसा के पूर्व आदर्श से गिरनार सदा गुञ्जायमान रहा है। अशोक के बहुत पहले से तीर्थ रहा, यह पाठक देख चुके हैं।[1] आज भी जैन ही उसे विशेष रूप से मानते और पूजते हैं - वे बराबर प्रत्येक समय गिरनार की वन्दना के लिए बड़ी संख्या में आते हैं।

जूनागढ़ से गिरनार को जाते हुए मार्ग में पोलीटिकल एजेण्ट श्री सुन्दरजी का बनवाया हुआ पलासिनी नदी का सुन्दर पुल मिलता है। उससे थोड़ी दूर आगे चलने पर तलहटी आ जाती है, जहाँ दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनों के मन्दिरों और धर्मशालाओं के अतिरिक्त शैवादि मन्दिर और धर्मशाला भी है। दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनों की धर्मशालायें सड़क के दोनों ओर आमने-सामने हैं। दिगम्बरीय धर्मशाला के भीतर तीन जैन मन्दिर व वेदियाँ हैं। अब एक विशाल मानस्तम्भ भी बन गया है। एक मन्दिर व धर्मशाला जूनागढ़ शहर में भी है। इन मन्दिर और धर्मशालाओं की व्यवस्था **"बन्डीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना श्री गिरनारजी"** नामक प्रबन्ध कमेटी द्वारा की जाती है। इन कमेटी की स्थापना का अपना इतिहास है, जिसे यहाँ लिखना उचित ही है।

पाठकगण यह तो पढ़ ही चुके हैं कि मूल में गिरनार पर्वत पर मूलनायक भ. नेमिनाथ कि मूर्ति आभारणादि रहित नग्न थी और गिरनार तीर्थ की व्यवस्था भी दिगम्बर जैन किया करते थे, किन्तु उपरांत मध्यकाल में जब श्वेताम्बर जैनों का प्राबल्य गुजरात में हो गया और वे राज्य शासन में अधिकारी नियुक्त हुए, तो उन्होंने गिरनार, शत्रुञ्जय आदि तीर्थों का प्रबन्ध अपने आधीन कर लिया। इतने पर भी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही मिलकर पूजा करते रहे। एक ही मन्दिर में दिगम्बरों की नग्न और श्वेताम्बरों की आभरणादि युक्त प्रतिमायें विराजमान रहतीं। दोनों ही सम्प्रदाय के लोग प्रेम से पूजा करते थे। किन्तु यह सुखद स्थिति बहुत दिनों तक न चल सकी। इन मन्दिरों में आभरणादि का परिग्रह ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों इनकी धार्मिकता कम होती गई और मालिकी का प्रश्न जोर पकड़ता गया। धर्म और धन पूर्व और पश्चिम जैसे भिन्न और विलक्षण तत्वों का एकमात्र वीतरागता के उपासक दिगम्बरों की गति इन मन्दिरों में कैसे अबाध रहती? परिणामस्वरूप संघर्ष फिर उठा, जिसने दिगम्बरों और श्वेताम्बरों को अलग-अलग कर दिया। जहाँ एक ही मन्दिर में सभी जैनी मिलकर पूजादि धर्म-कर्म करते थे, वहाँ वे अलग-अलग हो गए और नित नये झगड़े

1 .... the ancient Raivata or Ujjayant sacred among the Shravakas or Jains seet to Neminatha, the 22nd in their list of Tirthankaras, and doubtless a place of pilgrimage even before the days of Ashoka. – J. Burgess, Ibid, P. 145

होते रहे और अब भी होते हैं। परन्तु यह तो जैनत्व नहीं है, अहिंसा धर्म तो लड़ना नहीं सिखाता। लड़ते वे हैं जो धर्म से विमुख हैं और धन को ही आराध्य मानते हैं।

गिरनार की वन्दना करने दूर-दूर से लोग संघ लेकर आते थे। एक दफा वि.सं. १९१२ में राजस्थान के प्रतापगढ़ नगर से एक दिगम्बर जैन संघ वहाँ आया। प्रतापगढ़ के दिगम्बर जैनों में बन्डी नामक वंश प्रमुख और प्रसिद्ध रहा है। यह संघ उसी वंश के रत्न सेठ कस्तूरचंदजी और हीरालालजी के नेतृत्व में गिरनार आया था। ये दोनों भाई बन्डीलालजी के पौत्र थे। जब ये भाई पूजा वन्दना कर रहे थे, तो श्वेताम्बरीय प्रबन्धकों के द्वारा बाधा उपस्थित की गई, जिस पर उनमें कहा सुनी हो गई, दोनों भाईयों को यह असह्य हुआ वे जूनागढ़ के नवाब सा. श्री मोहब्बत खाँ सा. से जाकर मिले। शिष्टाचार के रूप में उन्होंने हजारों रुपये मूल्य का मोतियों का हार नवाब सा. के गले पहनाकर भेंट दिया। नवाब सा. बहुत ही प्रसन्न हुए। दोनों भाईयों ने अपनी कठिनाईयाँ उनको बताई और मन्दिर एवं धर्मशाला के लिए जमीन चाही, अपना कारखाना पृथक करना चाहा, जिसे नवाब सा. ने देना सहर्ष स्वीकार किया। दोनों भाईयों ने मूल्य देकर ही जमीन ली और जूनागढ़ शहर तथा गिरनार की तलहटी एवं पर्वत पर दिगम्बर जैन मन्दिर और धर्मशालायें बनाईं। श्वेताम्बर बन्धुओं को दिगम्बर भाईयों का अलग होना अखरा इसीलिए उन्होंने बड़ी अड़चनें डालीं, किन्तु नवाब सा. के सहयोग से सभी इमारतें बनकर तैयार हो गईं। नवाब सा. के दरबार में इन भाईयों को सम्मानीय पद प्राप्त हुआ और इनको नगर सेठ के समान कर देने से मुक्त कर दिया गया।

नवाब के साथ-साथ दोनों भाईयों का सम्मान जनता ने भी किया। गिरनारजी के पुजारीजी श्री बावलरामजी का कहना है कि जूनागढ़ की दशा श्री माली कीन्यात के महाजनों ने भी जिनमें वैष्णव, स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सभी सम्मिलित थे, दोनों भाईयों को सम्मानित किया अर्थात् न्याय के मुखिया के बाद इनको माननीय माना। इन दोनों भाईयों ने भी वात्सल्य धर्म का परिचय देकर अनेकों बार दशा श्री माली कीन्यात को निमंत्रित करके प्रीति भोज दिया- कई दफा 'नवकारसी' भी कराई। 'नवकारसी की रसोई' का अर्थ है कि नवकार मन्त्र बोलने वाली सभी जातियों की रसोई। सारांश यह बन्डी बन्धुओं का समुचित सम्मान जूनागढ़ में हुआ। उनका सम्मान होना स्वाभाविक ही था, क्योंक धर्मात्मा सज्जन सर्वत्र मान्य होता है।

सेठ कस्तूरचन्दजी और सेठ हीरालालजी बन्डी दोनों धर्म रसिक थे। धर्म पालन में स्वयं जागरूक हों, इतना ही नहीं इन्हें इस बात का भी ध्यान था कि उनके साधर्मी भाईयों को भी धर्म साधना की सुविधा हो। इसीलिए वे संघ लाए और गिरनार पर सुदृढ़ जिन मन्दिर और धर्मशालायें बनवाई जिनका प्रतिष्ठोत्सव शान से मनाया गया। उनकी मनोकामना पूरी हुई। जूनागढ़ शहर, तलटही और गिरनार की पहली टोंक पर जिन मन्दिरों को बनवाकर

उन्होंने अपनी लक्ष्मी को सार्थक बनाया था। धन्य थे वे कि उन्होंने अपनी ही शक्ति औ साहस से विरोध को चुनौती दी और धर्म को हमेशा के लिए फहरा दिया।

उनके पश्चात् वि.सं. १९८६ में रायबहादुर श्रीमन्त सेठ पूरनसाबजी सिवनी ने गिरना की तलहटी में वेदी प्रतिष्ठा कराके घर-घर थाली भर-भर कर मिठाई बाँटी थीं। इसी प्रका वि.सं. १९८८ में इन्दौर निवासी सेठ श्री शोभारामजी चुन्नीलालजी के द्वारा भी तलहटी में वेदी प्रतिष्ठोत्सव किया गया था। इस अवसर पर दशा श्रीमाली की न्यात तथा नवकारसी का भोज (रसोई) की गई थी।

वि.सं. १९६४ तक बन्डी बन्धुओं अर्थात सेठ कस्तूरचन्दजी और सेठ हीरालालजी एवं उनके पुत्रों ने स्वयं प्रतापगढ़ में रहते हुए तीर्थ का प्रबन्ध और व्यवस्था की, किन्तु उसी वर्ष सेठ मुन्नालालजी ने तीर्थ का हिसाब जैन गजट में प्रकाशित करा दिया और एक कमेटी चुनकर उसके हाथ क्षेत्र का सब काम सौंप दिया। यह कमेटी श्री बन्डीलालजी दिगम्बर जैन कारखाना श्री गिरनार जूनागढ़ के नाम से तीर्थ का सुचारू प्रबन्ध कर रही है। नियमानुसार कमेटी का मुख्य कार्यालय हमेशा के लिए श्री भाईजी के मन्दिर प्रतापगढ़ में तथा सभापति बन्डी-वंश का कोई सदस्य होगा। तदनुसार श्री बन्डी मिल्टनलालजी बम्बई कमेटी के सभापति हैं। किन्तु कमेटी के संरक्षक श्रीमान दानवीर रावराजा सेठ हुकुमचन्दजी कासलीवाल सा. इन्दौर (अब स्वर्गवासी) हैं, जिन्होंने हमेशा तीर्थ पर दिगम्बर जैन धर्म के अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाए जाने के लिए कोई कोर कसर उठा न रक्खी है, सचमुच आप धर्म के स्तम्भ हैं।

संवत् १९६४ में जब उक्त प्रकार कमेटी अस्तित्व में आई तो उसके पहले सम्माननीय सेक्रेटरी श्रीमान शाह अमृतलालजी नियुक्त हुए जिन्होंने बड़ी योग्यता के साथ तीर्थ की सुचारू व्यवस्था की। इस तरह प्रथम सेक्रेटरी की हैसियत से उन्होंने कार्य को अच्छी तरह जमाकर गिरनार तीर्थराज की २५ वर्षों तक बड़ी लगन के साथ सेवा की थी। ऐसे सेवाभावी तीर्थ भक्त श्रावकरत्न के धर्मभाव से यह तीर्थराज उन्नतशील होता आया है। कुछ वर्षों पूर्व इस कमेटी के मंत्री धर्मपरायण बंधु श्रीमान् सेठ फतेहलालजी खासगीवाला थे, जो प्रतापगढ़ के एक प्रसिद्ध राजमान्य जैनकुल के नर-रत्न थे। यह कुल 'शाह जड़ावचन्दजी खासगीवालों का घराना' कहलाता है और अपनी राज्य सेवा एवं समाज सेवा के लिए विख्यात है। सेठ फतेहलालजी बड़ी लगन से तीर्थ की सार-संभाल में संलग्न और सावधान रहते रहे।

इस प्रकार यद्यपि बन्डी बन्धुओं के त्याग और उत्साह भाव से गिरनार पर अलग दिगम्बर जैनों की स्थापना हो गई, परन्तु इसके साथ ही प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर उनके हाथ से निकलकर श्वेताम्बर बन्धुओं के अधिकार में पहुँच गए। पहले पृथक होने के बाद भी इन प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिरों की पूजा वन्दना करने दिगम्बर जैन जाया करते थे, परन्तु

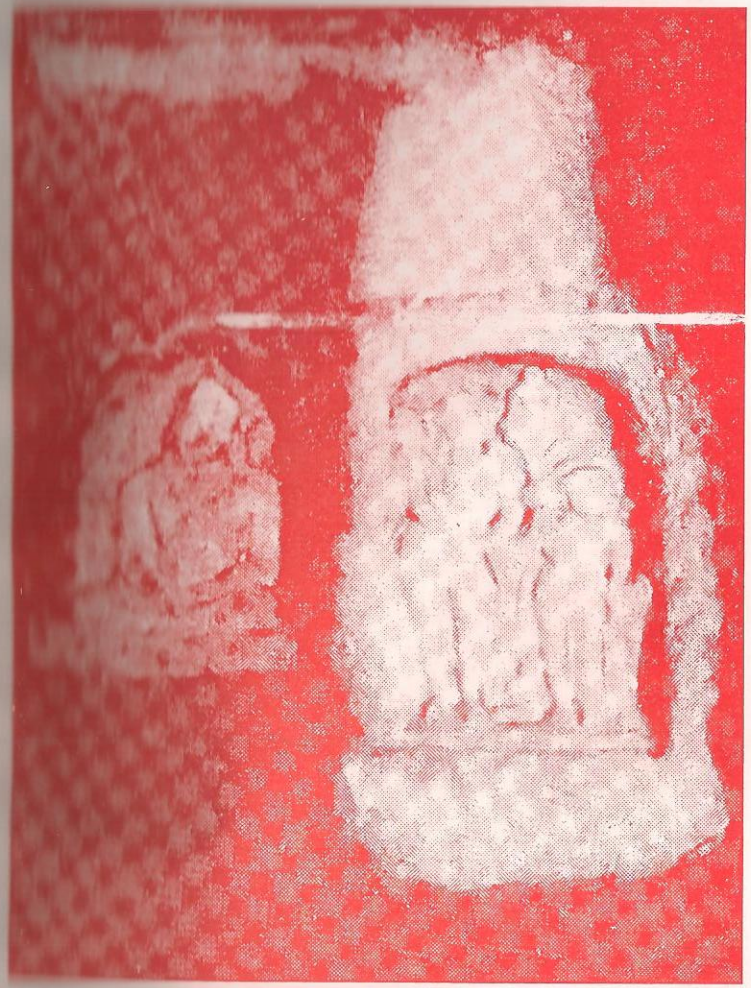

श्री गिरनारजी पहाड़ पर चढ़ते हुए प्रथम टोंक के नीचे पर्वत के पार्श्व भाग पर श्री दिगम्बर जैन प्रतिमाजी तथा धरणेन्द्र पद्मावति पार्श्वनाथ

श्री गिरनारजी की प्रथम टोंक पर गोमुखी कुण्ड क्षेत्र में
श्री चौबीस तीर्थङ्करों के चरण चिन्ह

श्री गिरनारजी पर्वत से उतरते हुए बाईं ओर विशाल काले
पाषाण खण्ड में उत्कीर्ण दि. जैन प्रतिमाजी

श्री राजुल की गुफा के आगे पहाड़ के खड़े भाग में
दो दिगम्बर जैन प्रतिमाजी

श्री गिरनारजी की चौथी टोंक पर
श्री प्रद्युम्नकुमार मुनि के चरण चिन्ह

श्री नेमिनाथ स्वामी के चरण चिन्हों पर बनी हुई देवकुलिका का दृश्य
(गिरनारजी की पांचवीं टोंक पर जो भ. नेमिनाथ की निर्वाण भूमि है)

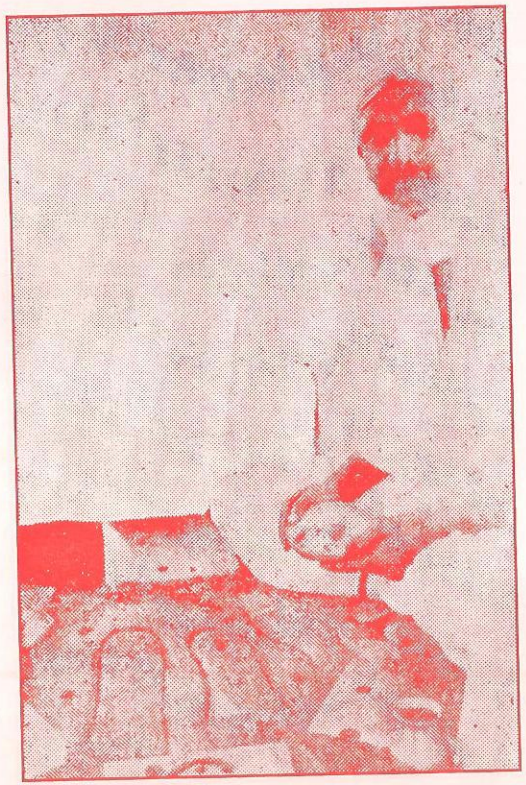

भ. नेमिनाथ की निर्वाण भूमि पर उनके चरण चिन्ह
(गिरनारजी की पांचवीं टोंक पर चरण जिनकी पूजा
दि. जैन कोठी के मुनीमजी कर रहे हैं)

श्री गिरनारजी की पांचवी टोंक पर चरण चिन्हों के पीछे भ. नेमिनाथजी की दिव्य मूर्ति

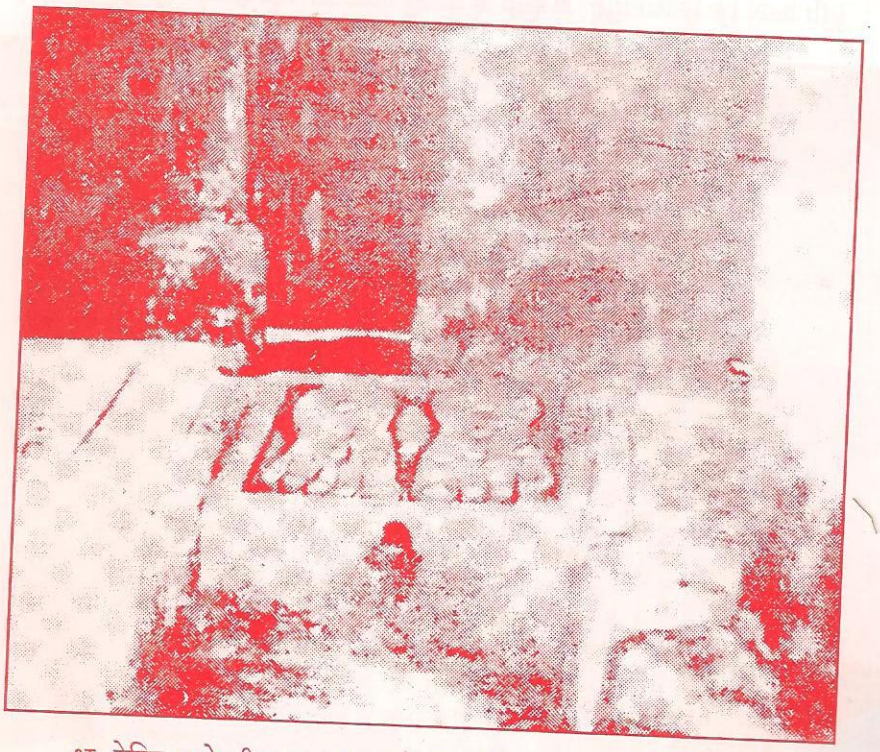

भ. नेमिनाथ के दीक्षा कल्याणक के चरण चिन्ह (सहसावन गिरनार)

सहसावन गिरनारजी में दूसरी टेरी का दृश्य
(इसके पीछे भ. नेमिनाथ के केवल ज्ञान कल्याणक के चरण चिन्ह हैं)

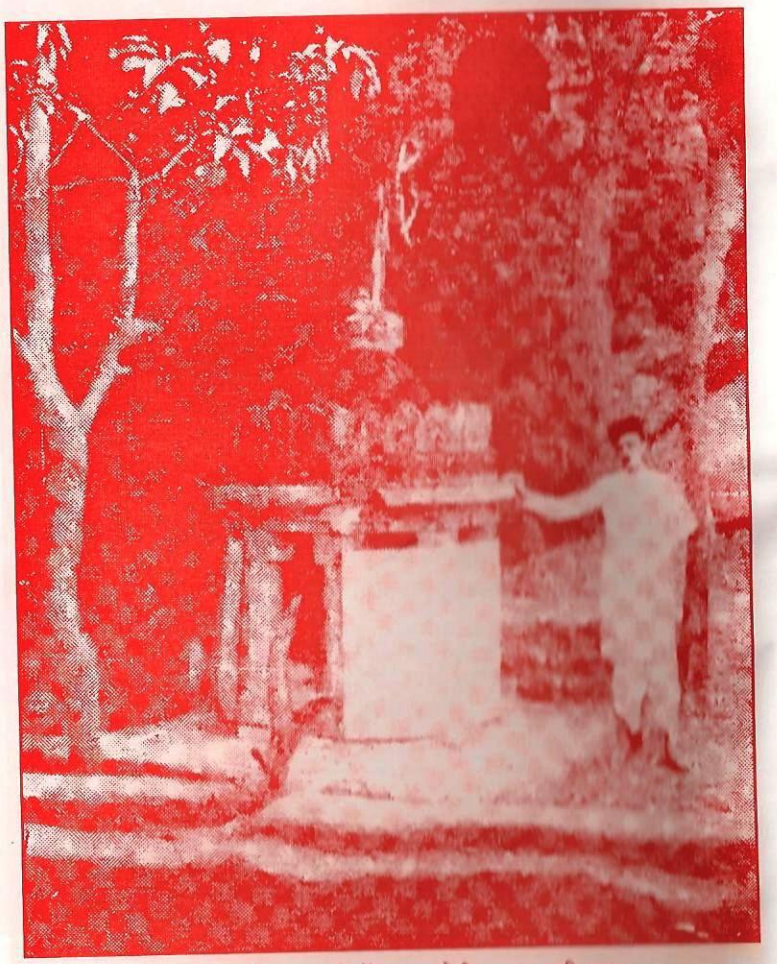

सहसावन गिरनारजी में प्रथम डेरी का बाहरी दृश्य
(इसमें भ. नेमिनाथ के दीक्षा कल्याणक के चरण-चिन्ह हैं)

अब वह बात नहीं रही। श्वेताम्बर बन्धु विरोध करने लगे तो नवाब सा. ने आदेश किया कि यदि कोट के मन्दिरों में दिगम्बर मूर्ति हो तो वे उसके दर्शन के लिए जा सकते हैं। किन्तु राज्य शासन के हस्तक्षेप ने कटुता को बढ़ाया ही ! यह था भी स्वाभाविक ! क्योंकि विरोध भाव जगने पर भी अपने पराए हो जाते हैं। श्वेताम्बरों ने चिढ़कर कोट के मन्दिरों में कोई चिह्न दिगम्बर का रक्खा ही नहीं- न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी यह नीति अपना रंग लाई।

श्री बाहुबली स्वामी की प्राचीन दिगम्बर प्रतिमा पर जो कोट के भीतर विराजमान थी, बहुत झगड़े होते थे। इनका अन्त करने के लिए सं. १९३५ में बाहुबलिजी की इस खडगासन दिगम्बर प्रतिमा को दि. मन्दिर में लाकर विराजमान किया गया। सहारनपुर निवासी ला. पार्श्वदासजी की धर्मपत्नी श्री कुंवरबाईजी ने उनके लिए एक छोटा-सा मन्दिर भी बनवा दिया था।

इस प्रकार गिरनार की तलहटी में दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनों के अलग-अलग मन्दिर और धर्मशालाएं बन गई एवं दोनों ही अपने-अपने यात्रियों की ठीक से सार संभाल करने लगे।

दिगम्बर जैन धर्मशाला से कोई सौ कदम के फासले पर पर्वत पर चढ़ने का द्वार है। जूनागढ़ के भूतपूर्व दीवान बेचरदास बिहारीलाल और डॉ. त्रिभुवनदास मोतीचन्द शाह के उद्योग से पत्थर की मजबूत सीढ़ियाँ गिरनार की चारों टोंकों तक लगवाई गई थी, यद्यपि उनके पहले भी जैनों ने उनको बंधाया था। सम्राट कुमार पाल को ऊर्जयन्त गिरनार पर चढ़ने का मार्ग सुगम करवाने की चिन्ता हुई थी। जब यह बात राजसभा में कही गई, तो यह निश्चय हुआ कि श्री राणाजी के पुत्र सेनापति आम इस मार्ग को ठीक बनवा सकेंगे। तदनुसार आम सोरठ के अधिनायक नियुक्त किए गए और उन्होंने पर्वत पर चढ़ने का सुगम मार्ग राजाज्ञा के अनुसार बनवाया था। उसी का पुनरोद्धार ब्रिटिश राज्य में युक्त प्रकार बनवाकर किया गया था। उपरोक्त द्वार से ही यह सीढ़ियाँ प्रारम्भ होती हैं। जूनागढ़ राज्य पर्वत पर चढ़ने का कर लेता था। लगभग तीन हजार से अधिक सीढ़ियाँ चढ़ने पर इस पर्वत की पहली टोंक का द्वार मिलता है यहीं पर 'सोरठ के महल' अर्थात राखगांर का उजड़ा हुआ आवास और कोट है। यहाँ पर एक धर्मशाला दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनों की है। कोट के भीतर अनेक प्राचीन जैन मन्दिर हैं, जिन पर अब श्वेताम्बर जैनों का अधिकार है। इस टोंक पर ही जैनों के मुख्य मन्दिर हैं- अन्य पर छोटी-छोटी देवकुलिकायें और चरण चिन्ह हैं- कहीं-कहीं पर्वत पाषाण में उकरी हुई जिन प्रतिमायें हैं जो प्रायः पद्मासन में दिगम्बर है। मार्ग में पर्वतारोहण के समय पर्वत के पार्श्वभाग में पद्मावती देवी सहित जिनेन्द्र पार्श्व की प्रतिमा है। ऐसी राजुलजी की गुफा के नीचे वाली चट्टान में भी हैं। इन मूर्तियों को पर्वत के पार्श्व भाग में

ठौर-ठौर पर उकेरकर मानों उसकी सामूहिक पवित्रता की छाप ही जैनों ने अंकित की है- सचमुच समूचा पर्वत ही जैनों के निकट पूज्य और पवित्र है। कोट के मन्दिरों में एक प्राचीन मन्दिर 'ग्रेनाइट' (Granite) पाषाण का है, जिसकी मरम्मत सं. ११३२ में सेठ मानसिंह भोजराज ने कराई थी। कर्नल टॉड सा. ने यह मन्दिर दिगम्बर जैनों का बताया था।[1] इसमें अब सम्भवनाथजी की प्रतिमा विराजमान है। श्री नेमिनाथ स्वामी का एक भव्य मन्दिर रामण्डलीक का बनाया हुआ है मोरकवंशी समूह के मन्दिरों में शिल्पकार्य दर्शनीय है। मन्दिरों का चौथा समूह संगराम सोनी का है। सम्वत् १८४३ के लगभग सेठ प्रेमाभाई ने इन मन्दिरों की मरम्मत कराई थी। इनके आगे सम्राट कुमारपाल का मन्दिर है। इस मन्दिर के बाहर भीमकुण्ड के पूर्व में बहुत सी प्राचीन खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हुई थी। श्री अभिनन्दन जिनके उक्त मन्दिर के पश्चात सेठ वस्तुपाल तेजपाल के बनवाए हुए सुन्दर मन्दिर हैं। इन मन्दिरों में पीले रंग का बढ़िया पत्थर लगाया गया है। कहते हैं, यह पत्थर सेठ वस्तुपाल ने भारतवर्ष के बाहर से मंगाया था। इन तीनों मन्दिरों के मूलनायक पार्श्वनाथ हैं। सेठ वस्तुपाल तेजपालजी अपने संघ में कई हजार दिगम्बर जैनों को भी यात्रा वन्दना के लिए लाए थे और इन मन्दिरों में दिगम्बर प्रतिमाओं के दर्शन करने यात्री जाते थे। उपरान्त सम्प्रति राजा का मन्दिर आता है, परन्तु उसमें प्राचीनता का चिन्ह शेष नहीं है।

आगे मुड़कर चलने पर दिगम्बर जैन मन्दिरों का समूह आता है। एक विशाल परकोट में तीन दिगम्बर जैन मन्दिर हैं। (१) सं. १९१५ का बना हुआ प्रतापगढ़ निवासी श्री बन्डीलालजी का है, जिसमें सं. १६६५ की प्रतिष्ठित श्री शान्तिनाथजी की तथा दूसरी सं. १४७५ की सेठ जीवराज पापड़ीवाल द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति है, (२) शोलापुर वालों का मन्दिर और (३) सहारनपुर वालों का मन्दिर, जिसमें बाहुबली स्वामी की सबसे प्राचीन खड्गासन मूर्ति विराजमान है। परकोट में पर्वत का एक पार्श्वभाग में भी पद्मासन दिगम्बर जैन प्रतिमा उकेरी हुई है। दिगम्बरियों के इस मन्दिर समूह से नीचे की ओर जाने पर सती राजुल की गुफा मिलती है, जहाँ उन्होंने तप तपा था। दिगम्बर जैन यहाँ ध्यान माड़ते और वन्दना करते हैं उनके लिए यह विशेष आकर्षण की वस्तु है। पर्वत के इस भाग का जो चट्टान है, उस पर भी दिगम्बर जैन मूर्तियाँ उकेरी हुई हैं।

दिगम्बरीय मन्दिरों के आगे दाहिनी ओर चौमुखी मन्दिर है, जिसके आगे रथनेमि का श्वेताम्बरीय मन्दिर आता है। यहाँ से ऊपर की ओर चढ़कर अम्बिकादेवीजी के मन्दिर को

1 "To the East of the Devakota, are several temples the principal being the temple of Mansingh Bhojraj of Kaccha – an old granite temple near the entrance gate which Tod call a Digamber Temple of Neminatha." – The Report, P. 139

जाते हैं। अम्बिकादेवी के मन्दिर को जैन और वैष्णव दोनों पूजते हैं।[1] बर्जेस सा. का कहना था कि पहले यह मन्दिर जैनों का था।[2] इस मन्दिर की बगल में श्री शम्भुकुमार के चरण हैं। आगे बढ़ने पर वैष्णवों के आवास के पास ही एक देवकुलिका में भी चरण चिन्ह है। यहाँ से तीसरी टोंक पर जाया जाता है जो इससे ऊँची है। इस पर भी चरणचिन्ह हैं। वहाँ से चौथी और पांचवीं टोंक के दर्शन होते हैं।

चौथी टोंक को जाने के लिए तीसरी टोंक से बिल्कुल नीचे ४००० फीट उत्तर जाना पड़ता है, क्योंकि चौथी और पांचवीं टोंकों के पर्वत अलग-अलग खड़े हुए हैं। चौथी टोंक से मुनिराज प्रद्युम्नकुमार मुक्त हुए हैं। इस पर्वत पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं। वर्षा के पानी ने जो मार्ग-सा बना लिया है, उसी के सहारे यात्री चढ़ते हैं। इसी कारण चढ़ाई बहुत ही कठिन है। टोंक के ऊपर एक काले पाषाण पर नेमिनाथजी की प्रतिमा तथा दूसरी शिला पर चरण हैं। इसके आगे ही पांचवीं टोंक है, जिस पर एक मठिया में भ. नेमिनाथ के चरण चिन्ह हैं। जिस पाषाण पर चरण है उसी पर एक दिगम्बर जैन प्रतिमा भी (पद्मासन) उकेरी हुई थी। वह शिखर सबसे ऊँचा है और चारों ओर का दृश्य अत्यन्त मनोहारी है, हम इस पर पौ फटते ही पहुँचे थे- उस वेला की निस्तब्धता में अपूर्व शांति थी।

इस पाँचवीं टोंक के ऊपर चरण चिन्हों के पास ही एक बड़ा भारी घण्टा भी बँधा हुआ है, जिसकी देखभाल नंगा वैष्णव साधु करता है। भ. नेमि की इन चरणों को वैष्णव लोग गुरु दत्तात्रेय के चरण कह कर पूजते हैं। किन्तु मूल में यह टोंक चरण भ. नेमि से सम्बन्धित होने के कारण, जैसे कि हिन्दू शास्त्रों से भी सिद्ध होता है,[3] जैन ही हैं। भ. नेमि के मुख्य गणधर का नाम भी दत्त था और वे इस टोंक पर नेमि के साथ रहे थे। सम्भव है कि उसी दत्त को लक्ष्य करके वैष्णव इन चरणों को दत्त आत्रेय के बताते हैं। जो भी हो, यह निश्चित है कि इस पांचवीं टोंक की मान्यता दिगम्बर जैनों में अत्यधिक है, क्योंकि यह निर्वाण भूमि है। बर्जेस सा. ने भी लिखा था कि दिगम्बर जैनों के लिए पूजा की यह विशेष वस्तु

1 जैन डायरेक्टरी बम्बई पृ. ७६३-८३४

2 The Report, P. 175

3 इस पुस्तक का छटा अध्याय पढ़िए।

4 "From this peak we descend four hundred feet to about the level of the Kamandala Kunda, a reservoir of water on the face of the hill and again climb a steep ascent that muscles of the travellers legs toward the Guru Dattatray peak .....

It has a small open shrine or pavilion over the footmarks or paduka of Neminatha cut in the rock and was being ministered to by a naked ascetic, beside it hung heavy bell.

है।[4] भ. नेमि के कारण ही यह नेमिनाथ की टोंक कहलाती है। पूर्वकाल के दिगम्बर जैन लेखकों ने इसका उल्लेख किया है।

'दिगम्बर जैन डायरेक्टरी' (पृ. ७६४) में लिखा है कि इस स्थान से गणधर वरदत्त मुक्त हुए थे, 'निर्वाणकांड' में वरदत्तजी का निर्वाण स्थान दूसरा ही बताया है।

इस टोंक से उतरने पर रेणुका शिखर मिलता है और फिर कालिका की टोंक आती है। इन टोंकों पर कोई जैनी नहीं जाता, इन पर जाना भयंकर है।

"This Neminatha or Arishthnemi, who name to this summit and to whom the Jains consider the whole mount as sacred is the 22nd of their defied saint – men who through their successful austerities, they imagine have entred Nirvana have done with the evils of existence. This one is the object of Worship with the Digambara or naked Jains – His complexion they say was black & most if not all of his images here of that colour like all other Tirthankars, he was son of Samudravijaya, king of Saurynagar, or Siriyanapuri in the country of Kusavarta and Harivansa race his paternal uncle being Vasudeva, the father of the famous Krishna at the age of three hundred he renounced the world and leaving. Dwarka went to Girnar to spend the remaining seven hundred years of his long life in asceticism, he received his Bodhi of highest knowledge whilst at Seshavana, to the east of the Bherva Jap where footprints (Paglan) are also carved some say Neminath's, others Ramananda's. His first convert was a king Dattatri to whom he became guru after which he gradually rose to the exalted rank of Tirthankara and finally attained. Nirvana on this lovely pinnacle of rock which retains his name. He had as tutelerly Goddess in this lovely or familiar Devi-Ambika Mata the same to whom the old temple on the first summit is dedicated. The Mango tree is also appropriated to him by the Sravaks as his 'Bo-tree' while the Sankha or conch shell is his cognizance, He is infact the Krishan of Jains."

– James Burgess, Report ..... PP. 175-176

इस प्रकार पांचवीं टोंक की वन्दना करके यात्री वापस लौटकर दूसरी टोंक के चौराहे पर आता है, जहाँ गोमुखीकुण्ड के पास से दाहिनी ओर के मार्ग पर घूमकर वह सहसावन के लिए जाता है। गोमुखीकुण्ड में हमने चौबीस तीर्थङ्करों के चरण पट की वन्दना की थी- यहाँ पर्वत में से एक जलधारा निरन्तर बहती हुई उस पवन पट का अभिषेक करती रहती है। यह पट दिगम्बर जैनों के लिए पूजा की खास चीज है। यहाँ के दर्शन करके यात्री सहसावन को जाता है।

सहसावन में भ. नेमि के दीक्षा कल्याणक और केवल ज्ञान कल्याणक की द्योतक देवकुलिकायें बनी हुई हैं, जिनमें चरण चिन्ह बने हैं। यहाँ भ. नेमि के दो कल्याणक हुए, इस कारण दिगम्बर जैनों के निकट इसका महत्व विशेष है। निस्संदेह इसकी यात्रा किए बिना भक्त अपनी वन्दना पूरी हुई नहीं समझता। यह उद्यान बड़ा ही रमणीक है- एकाग्र ध्यान साधना के लिए यह एक सुन्दर निमित्त है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनों में इन पर भी संघर्ष चला, परन्तु जूनागढ़ राज्य ने दिगम्बर जैनों का पूजा-प्रक्षाल का अधिकार बहाल रखा। निस्सन्देह यह पवित्र स्थान जो जीवमात्र के लिए आत्म कल्याण का साधन है।

'सेसावन'- सहसाम्रवन का अपभ्रंश है, जहाँ भ. नेमि ने तप तपा और ज्ञान पाया था। दिगम्बर जैनों में इसी कारण सेसावन की महत्ता विशेष है। जब संवत १९४८ में गिरनार पर्वत पर चढ़ने के लिए किले की तरफ सीढ़ियाँ बनाई जा रही थी, तब दिगम्बर जैनों का ही ध्यान सेसावन से नीचे उतरने के मार्ग पर सीढ़ियाँ बनवाने की ओर गया था। तदनुसार सहारनपुर निवासी दिगम्बर जैन बन्धु श्रीमान लाला शान्तिलालजी ने पचास हजार रुपए डॉ. त्रिभुवनदासजी को इन सीढ़ियों को बनवाने के लिए दिए थे। दिगम्बर जैनों की दानशीलता से सेसावन से नीचे उतरने के लिए जंगल में होता हुआ मार्ग कुछ सीढ़ियों और विश्राम देहलियों के बन जाने के कारण सुगम हो गया था। इस मार्ग से चलना भी कम पड़ता है, परन्तु जंगल के कारण लोग कम आते हैं। हम सपरिवार इस मार्ग से ही नीचे उतरे थे। क्या ही अच्छा हो, यदि उन सीढ़ियों की मरम्मत करा दी जावे। वैसे सेसावन से लौटकर यात्री पहली टोंक पर उतरता है।

श्वेताम्बर जैनों में तलगृह में विराजमान अमीजरा पार्श्वनाथजी की प्रतिमा प्रसिद्ध है, जिसकी कोठी से एक बून्द पानी टपकता बताया जाता है। इस प्रकार गिरनार अपने वर्तमान रूप में सभी प्रकार के लोगों के लिए आकर्षण की चीज रहा है, परन्तु जैनों के निकट उसकी

मान्यता एक अत्यन्त प्राचीनकाल से रही है। यह कहना गलत है कि चूड़ासमास वंश के राजाओं के पश्चात जैनों का सम्पर्क गिरनार से हुआ और तभी उन्होंने अपनी इमारतें बनाई। वास्तव में जैनों के मन्दिर और गुफा आवास चूड़ासमास वंश के राजाओं के आने के बहुत पहले से विद्यमान थे, जैसे कि पूर्व पृष्ठों के उल्लेखों से स्पष्ट है। हम देख चुके हैं कि सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में भी गिरनार पर जैन मन्दिर विद्यमान थे। श्रुतकेवली गोवर्द्धन और भद्रबाहु वन्दना के लिए यहाँ आते थे और श्रीधरसेनाचार्यजी तो यहाँ चन्द्रगुफा में संघ सहित रहते ही थे। दिगम्बर जैन संघ का गिरनार मुख्य केन्द्र रहा है। अपने इस रूप में गिरनार जीवमात्र के लिए सुखशान्ति प्रदायक निमित्त रहा है। भक्तजनों ने निरन्तर अहिंसा और सत्य के आलोक में बढ़ने के लिए, गिरनार से प्रेरणा पाई है।

(८)

उपसंहार

'एवं तपस्या षट्पंचाशदिदन प्रमे।
छद्मस्थ समये याते गिरौ रैवतकामिधे ॥१७९॥७१॥
षष्ठोपवास युक्तस्य महावेणोरधः स्थितेः।
पूर्वऽन्हयश्वयुजे मासि शुक्लरक्षादिमे दिने ॥१८०॥
चित्रायां केवल ज्ञान मुदरद्यत सर्वगम।
पूजयन्ति स्मातं देवाः केवलावगमोत्सवे ॥१८१॥'

- उत्तरपुराणः

भगवान नेमिनाथ गिरनार पर मुनि हुए, और उनकी छद्मस्थ अवस्था के जब छप्पन दिन व्यतीत हो गए, तब आचार्य गुणभद्र स्वामी बताते हैं कि वह एक दिन रैवतक (गिरनार) पर्वत पर तेला का नियम लेकर किसी बड़े भारी बांस के वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। निदान वहाँ ही उनको असौज कृष्ण पढ़िवा के दिन चित्रा नक्षत्र में प्रातःकाल के समय समस्त पदार्थों का ज्ञान कराने वाला केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस समय देवों ने आकर केवल ज्ञान का उत्सव मनाया। इन्द्र ने समवसरण की रचना की- गिरनार उस देवोपुतीति वैभव को पाकर सदा के लिए अमर हो गया। वह तीर्थ बन गया, क्योंकि उसके निमित्त से लोक को ज्ञाननेत्र मिला था। उसकी शिखर पर समवशरण बड़ा ही सुन्दर शोभता था- वह त्रिलोक भुवनाश्रय जो था। सभी जीव वहाँ वरदत्तादि गजाधिषों के नेतृत्व में[1] अभय और सुखी हुए थे। निस्सन्देह गिरनार अभयधाम बना था और आज भी इस पावन रूप को अपने गात में छिपाए हुए है।

भगवान नेमि ने समस्त आर्य लोक को प्रबुद्ध करके गिरनार पर आकर ही योग निरोधा था। वहीं पर ही श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न, शम्भु और अनिरुद्ध नामक यदुवन्शी राजर्षियों ने तप-तपा और सिद्ध पद पाया था, गिरनार के तीन टूक उनके निर्वाण धाम बने।[2] पहला कूट

1 'वारदत्तयोऽभूवन्नेकादश गणेशिनः।' इत्यादि

– उत्तरपुराण पृ. ३८७

2 'पद्युम्नमुनिना सार्धपूर्वमन्ना चलाचल:
कूटत्रयं समारूढा प्रतिमायोग धारिणः ॥१९७॥'

भ. नेमि का तपोवन रहा एवं पांचवीं टूक से मुक्त हुए।[1] गिरनार पर ही नारायण कृष्ण और बलभद्र एवं अनेक यादव नर-नारियों ने भ. नेमि से धर्मोपदेश सुना और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार व्रत-संयम धारण किए। इस प्रकार ज्ञानाराधना और संयम साधन की पुनीत परम्परा गिरनार का अवलम्ब ले अवतरित हुई। दिगम्बर जैनऋषियों ने उसे अपना केन्द्रीय आवास बनाया। उपरान्त श्वेताम्बर जैन भक्तों ने उसकी शिखर पर अपने वैभव को बिखेर कर त्याग भाव का परिचय दिया। उसके मोहक रूप से आकृष्ट हो जैन, हिन्दू और मुसलमान सभी उसकी वन्दना करने आते हैं, सब ही साम्प्रदायिक कट्टरता भुलाकर अपने-अपने मतानुसार वन्दना भक्ति करते हैं। भारतीयता और मानवता का सुन्दर सम्मिलन गिरिराज पर होता हुआ दिखाई पड़ता है- विश्व प्रेम की पावनधार वहाँ बहती है। यह प्रेम और शान्ति चिरकाल तक रहें और सभी लोग निरक्षेप होकर धर्म का लाभ गिरनार से लेते रहें, हमारी यही कामना है। गिरनार चिरकाल तक ऊर्जयन्त बना रहकर लोक कल्याण का प्रेरणास्रोत बना रहे, यही भावना है। जय हो ऊर्जयन्त की, नेमि-निर्वाण-धाम की। अहिंसा धर्म चक्र प्रवर्तक क्षेत्र, यह गिरनार सदा जयशील रहे। हम और सब उसकी नित्य वन्दना करके शाश्वत सुख का उपभोग करें- शासन देवी अम्बे का यह वरदान हो।

इतिशम् !

---

1 'शुक्लध्यानं समापूर्य त्रयस्ते घाति घातिनः।
कैवल्यनवक प्राप्य प्रापन्मुक्तिमथात्यदाः ॥१९८॥७२॥'

– उत्तरपुराण

'भट्टारकोऽपि सम्प्रापदूर्जयन्तं धाराधरम्।
शीताशोः सप्तमी पूर्व रात्रौ निर्वाणमाप्तवान।'